विज्ञप्ति।

विचार था कि, यह ग्रन्थ जैनमित्रके साथ २ क्रमसे प्रकाशित किया जाय। परन्तु अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए कि बहुत थोडे दिन यह नियम चल सका। अवकाशके अभावसे जितनी शीघ्रतासे चाहिये, इसे हम पूर्ण न कर सके। और अब आगे जैनमित्रके साथ इसके पृथक् २ पृष्ठ वितरण करनेसे ग्राहकोंको संग्रह करनेमें असुविधा होती है, इसलिये पूर्व विचारको छोड़कर अभीतक जितना तयार हो चुका है, उसका यह एक भाग प्रकाशित कर दिया जाता है। और पाठकोंको विश्वास दिलाया जाता है कि, आगेके भाग जहांतक हो सकेगा, हम शीघ्रही पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

इस ग्रन्थकी इस आवृत्तिसे तथा पुनरावृत्तिसे जो कुछ लाभ होगा, वह जैनमित्रको सादर समर्पित है। इत्यलम्.

ग्रन्थकर्त्ता।

ग्रन्थ मिलनेके ठिकाने—

१ जैनमित्रकार्यालय—पो० कालबादेवी–बम्बई.

२ जौंहरी माणिकचन्द पानाचन्दजी–चौपाटी—बम्बई.

३ श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय–गिरगांव—बम्बई.

जैनसिद्धान्त।

(JAIN PHILOSOPHY)

आजकल हमारे जैनीभाइयोंमें राज्यविद्याका प्रचार अधिक सा होने लगा है और इसके निमित्तसे लौकिक उन्नतिमें बहुत कुछ सहायता मिलती है जिसको कि हम जैनसमाजका सौभाग्य समझते हैं। परन्तु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि, यह पश्चिमी विद्यारसिक नवयुवक धर्मविद्यासे प्रायः शून्यसे रहते हैं। एक तो इन महाशयोंमें द्वितीय भाषा (Second Language) संस्कृत लेनेकी प्रथा बहुत ही मंदगतिको प्राप्त हो रही है। दूसरे कदाचित् किसीने संस्कृत द्वितीय-भाषा ग्रहण भी की, तो आजकलके सरकारी स्कूलोंमें संस्कृत विद्या इतनी कम पढ़ाई जाती है, कि जिसका जैनधर्मके रहस्यदर्शक शास्त्रोंके अवलोकनमें बहुत कम उपयोग होता है और इसप्रकार ये नवयुवक धर्मविद्यासें वंचित रह जाते हैं। यद्यपि बहुतसे जैनशास्त्रोंका हिन्दी अनुवाद मौजूद है, परंतु एक तो उन ग्रंथोंकी भाषाशैली प्राचीन ढंगकी है। दूसरे वे ग्रंथ एक एक विषयकी मुख्यता लेकर रचे गये हैं; इसकारण उनके अभ्यास करनेमें दूसरे ग्रंथोंकी अथवा विद्वान् अध्यापककी आवश्यकता रहती है। इसलिये इन महानुभावोंकी वर्तमान जैनग्रंथोंके अभ्यासमें बहुत ही कम प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसी अवस्थामें इन महाशयोंके वास्ते एक ऐसे निबन्धकी आवश्यकता है कि, जिसकी भाषाशैली वर्तमान ढंगकी हो, तथा उसका क्रम इसप्रकारसे रक्खा जावे कि, जिससे जैन-सिद्धान्तोंसे नितान्त अपरिचित मनुष्य भी उस निबन्धको गुरुकी सहायताके विना सुगमतासे समझ सके। इस ही उद्देश्यसे जैनसिद्धान्तोंका रहस्य इस निबन्धके द्वारा पाठकोंकी भेट करनेका विचार है। आशा है कि, पाठक महाशय इस लेखको रुचिपूर्वक वांचकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

संसारमें प्राणी मात्रकी यह इच्छा रहती है, कि हमको किसी प्रकार सुखकी प्राप्ति हो। परंतु अनेक साधन करनेपर भी संसारमें कोई सुखी नहीं दीखता, इससे सिद्ध होता है कि, संसारमें सुख है ही नहीं। यथार्थ सुख सिवाय मोक्षके कहीं भी प्राप्त नहीं हो सक्ता और इस ही कारण चारों पुरुषार्थोंमें मोक्षको ही परमपुरुषार्थ कहते हैं। इस कारण सुखके वांछक मोक्षके साधनमें ही प्रयत्न करते हैं। उस मोक्षका कारण पूर्वाचार्योंने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोकी एकता वताया है।

जो पदार्थ जैसा है, उसको "यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है" इस प्रकार दृढविश्वास (श्रद्धान) रूप जीवके परिणाम विशेषको सम्यग्दर्शन कहते हैं। पदार्थ, तत्त्व, द्रव्य, वस्तु ये सब एकार्थ हैं। अब जरा ध्यान लगाकर द्रव्यका स्वरूप सुनिये। जैनसिद्धांतोंमें "सद्द्रव्यलक्षणं" तथा "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" इस प्रकार द्रव्यके दो लक्षण किये हैं। इन दोनों लक्षणोंमें परस्पर विरोध नहीं है, किन्तु अपेक्षा विशेषसे वाक्यांतर प्रवेशद्वारा दोनों एक ही अभिप्रायके समर्थक हैं। सम्पूर्ण पदार्थोंमें कुछ न कुछ शक्ति अवश्य होती है। जैसे, जलमें तृषानाशकशक्ति, भोजनमें क्षुधानाशक शक्ति, और आत्मामें ज्ञान

नेकी शक्ति है। गुण, स्वभाव, विशेष शक्ति इत्यादि एकार्थवाची हैं।

जैसे कि, एक आमके फलमें भिन्न २ इन्द्रिय गोचर स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णादि अनेक गुण देखे जाते हैं, उस ही प्रकार जीव पुद्गल इत्यादि प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त गुण हैं। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि, जैसे एक थैलीमें बहुतसे रुपये हैं, उस ही प्रकार एक द्रव्यमें बहुतसे गुण हैं। क्योंकि, जिस प्रकार थैली और रुपये भिन्न २ हैं, उस प्रकार गुण और द्रव्य भिन्न २ नहीं हैं। किन्तु जिस प्रकार मूल, स्कन्ध, शाखा, पत्र, पुष्प और फलोंके समुदायको वृक्ष कहते हैं; तथा मूलस्कन्धादिकसे वृक्ष कोई भिन्न पदार्थ नहीं हैं, उस ही प्रकार गुणोंका जो समुदाय है, सो ही द्रव्य है। गुणोंसे द्रव्य कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। भावार्थ—अनन्त शक्तियोंके अविष्वक् (अभिन्न) भावको ही द्रव्य कहते हैं। इन गुणोंमेंसे कितने ही गुण ऐसे हैं, जो अनेक द्रव्योंमें एकसे हैं। उनको सामान्यगुण कहते हैं। जैसे कि, सत्त्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि। और कितने ही गुण ऐसे हैं, जो एक ही द्रव्यमें हैं, इतर द्रव्योंमें वैस गुण नहीं होते। उनको विशेष गुण कहते हैं। जैसे जीवके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य और पुद्गलके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण। जितने क्षेत्रमें एक शक्ति रहती है, उतने ही क्षेत्रमें तादात्म्य सम्बन्धसे अपने २ स्वरूपको लिये हुए समस्त शक्तियां रहती हैं। इन शक्तियोंमेंसे किसी भी शक्तिका कभी भी नाश नहीं होता है और न एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप परिणमन करती है। इन समस्त शक्तियोंके एक बन्धानरूप पिंडको देश कहते हैं। इस देशके अविभागी अंशको देशांश कहते हैं। अखंड देशके इन अविभागी कल्पित अंशोंसे द्रव्यके महत्त्व, लघुत्व, कायत्व और अकायत्वकी प्रतीति होती है। जिस प्रकार अखंड आकाशके विष्कंभमें अंगुल, वितस्ति, हस्त इत्यादि कल्पना की जाती है, उस ही प्रकार अखंड देशके विष्कंभमें प्रथम अंश, द्वितीय अंश, तृतीय अंश, संख्यात, असंख्यात, अनंत, देशांशोंकी कल्पना की जाती है। जिस प्रकार देशमें देशांश हैं, उस ही प्रकार गुणमें गुणांश हैं। किन्तु जिस प्रकार देशमें विष्कंभक्रमसे देशांश होते हैं, उस प्रकार गुणमें विष्कंभ क्रमसे गुणांश नहीं हैं। गुणमें तरतम रूपसे गुणांश होते हैं। जैसे गुड, खांड, शक्कर और अमृतमें मधुररसकी तरतमता है, अर्थात् प्रत्येक गुणांश, द्रव्यके समस्त देशमें व्यापक रहता है। इस प्रकार देशदेशांश गुणगुणांश इन सबको एक आलाप (शब्द) करके "द्रव्य" ऐसा कहते हैं। द्रव्यकी इस अंशकल्पनाको पर्याय कहते हैं। यह अंशकल्पना दो प्रकार की है, एक तिर्यगंश कल्पना दूसरी ऊर्द्धांश कल्पना। एक समयमें द्रव्यके अखंड देशमें विष्कंभक्रमसे जो देशांशोंकी कल्पना है, उसको तिर्यगंश कल्पना कहते हैं। इस ही को द्रव्यपर्याय कहते हैं। अनेक समयोंमें प्रत्येक गुणकी कालक्रमसे तरतमरूप गुणांश कल्पनाको ऊर्द्धांश कल्पना कहते हैं। इसहीका नाम गुणपर्याय है। शक्ति (गुण) दो प्रकारकी होती हैं, एक भाववती शक्ति, दूसरी क्रियावती शक्ति। द्रव्यके ज्ञानादिक स्वभावोंको भाववती शक्ति कहते हैं। द्रव्यकी उस शक्तिको जिसके निमित्तसे द्रव्यमें प्रदेशपरिस्पंद (चलन) होकर आकार विशेषकी प्राप्ति होती है, उसको क्रियावती शक्ति कहते हैं। इस-

हीका दूसरा नाम प्रदेशवत्व है। गुणके परिणमनको गुणपर्याय कहते हैं। और जब गुणके दो भेद हैं, तो गुणपर्यायके भी दो भेद हुए। अर्थात् अर्थगुणपर्याय और व्यंजनगुणपर्याय। भाववती शक्तिके परिणमनको अर्थगुणपर्याय और क्रियावती शक्तिके परिणमनको व्यंजनगुणपर्याय कहते हैं।

द्रव्यमें अनन्त गुण हैं, उनके दो विभाग हैं, एक सामान्य और दूसरा विशेष। द्रव्यके सामान्य गुणोंमें छह गुण मुख्य हैं, १ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघुत्व और ६ प्रदेशवत्व। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी भी अभाव नहीं होता, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व (जैसे घटादिकमें जलानयनादि अर्थक्रिया हैं) होता है, उसको वस्तुत्व कहते हैं। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य एक परिणामसे परिणामान्तर रूप परिणमन करता है, उसको द्रव्यत्व गुण कहते हैं। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य प्रमाणके विषयपनेको प्राप्त हो, उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी अनंत शक्तियां एक पिंडरूप रहती हैं, तथा एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप नहीं परणमन करती है, अथवा एक द्रव्य अन्यद्रव्यरूप नहीं परिणमन करती, उस शक्तिको अगुरुलघुत्वगुण कहते हैं, और जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें आकार विशेष होता है, उसको प्रदेशवत्व गुण कहते हैं। द्रव्यके छह भेद हैं—१ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म, ५ आकाश और ६ काल। जीवद्रव्यमें १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ सुख, और ४ वीर्य विशेषगुण हैं। इन ही चारो गुणोंको सामान्य आलापकरके चेतना कहते हैं। पुद्गल द्रव्यमें १ स्पर्श, २ रस, ३ गंध और ४ वर्ण विशेषगुण हैं। इन ही चारों गुणोंको सामान्य आलापकरके मूर्तत्व कहते हैं। धर्मद्रव्यमें गतिहेतुत्व, अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुत्व, आकाश द्रव्यमें अवगाहहेतुत्व और कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व विशेष गुण हैं।

पहले द्रव्यके दो लक्षण कह आए हैं—एक 'सद्द्रव्यलक्षणं' और दूसरा 'गुणपर्ययवद्द्रव्यम्-' सो इन दोनों लक्षणोंका सारांश यह है कि, द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक है। जिसका खुलासा इस प्रकार है कि, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनोंको एकालापकरके सत् कहते हैं। ध्रौव्य नित्यको और उत्पाद व्यय उत्पत्ति और नाशको कहते हैं। तथा जिसमें उत्पत्ति और नाश होते हैं उसको अनित्य कहते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि, सत्का अर्थ कथंचित् नित्यानित्य है और यही सारांश 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' इस लक्षणका है। क्योंकि, गुण नित्य है और पर्य्याय अनित्य है। अब यहां पर यह शंका हो सक्ती है कि, न्यायका यह सिद्धान्त है कि, सत् का विनाश और असत्की उत्पत्ति कदापि नहीं होती; क्योंकि जो सत्का विनाश होगा, तो धीरे २ कभी न कभी समस्त जगत्का भी लोप हो जायगा, और जो असत्का उत्पाद होगा, तो मृत्तिकाके विना घटकी भी उत्पत्ति हो जायगी। इत्यादि अनेक दोष आते हैं। इसलिये जब असत्का उत्पाद और सत्का विनाश नहीं होता, तो असत्पर्यायकी उत्पत्ति और सत्पर्यायका विनाश किस प्रकार सम्भव है? तथा जब पर्यायका द्रव्यके साथ तादात्म्य

सम्बन्ध है, तो पर्यायके नाश होने पर द्रव्यका भी नाश हो जायगा। इसका समाधान इस प्रकार है कि, व्ययोत्पादका अभिप्राय नष्टोत्पन्न नहीं है, किन्तु भूत्वाभवन है। जैसे कि, जलकी एक कल्लोलका अभाव होकर दूसरी कल्लोल नहीं होती है, किन्तु प्रथम कल्लोल ही दूसरी कल्लोलरूप हो जाती है। भावार्थ—जो पदार्थ पूर्व पर्य्यायमें एक आकार रूप है, वही पदार्थ उत्तर पर्य्यायमें दूसरे आकाररूप हो जाता है। न तो कुछ नष्ट होता है और न कुछ उत्पन्न होता है। इस ही प्रकार अर्थ पर्य्यायमें भी जो ज्ञान पूर्वसमयमें घटाकार है, वही ज्ञान उत्तर समयमें पटाकार हो जाता है। अब पदार्थका विशेष स्वरूप विचारनेका अवसर है, परन्तु उक्त विशेष स्वरूपका विचार प्रमाण, लक्षण, नय और निक्षेपके जानेविना नहीं हो सक्ता, इस कारण पहले इन चारोंका संक्षेपस्वरूप लिखा जाता है।

प्रमाण नाम यथार्थ ज्ञानका है, उसके मूल-भेद दो हैं:—१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष। प्रत्यक्ष प्रमाण उस ज्ञानको कहते हैं, जो पदार्थके स्वरूपको स्पष्ट रीतिसे जानता है। उसके भी दो भेद हैं १ सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष २ पारमार्थिकप्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष उसको कहते हैं, जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे वस्तुको स्पष्ट जानता है, और पारमार्थिक प्रत्यक्ष उसको कहते हैं कि, जो किसीकी सहायता विना स्वयं वस्तुको स्पष्ट जानता
समस्त ...के तीन भेद हैं, १ अवधिज्ञान, २ मनः
भी शक्तिका ... ...ज्ञान। परोक्ष उस ज्ञानको
एक शक्ति दूसरी शक्ति... ...पको अस्पष्ट जानता है।
समस्त शक्तियोंके एक ... ...ने, २ प्रत्यभिज्ञान,
कहते हैं। इस देशके अविभ...

३ तर्क, ४ अनुमान, और ५ आगम। धारण की हुई वस्तुको "वह पदार्थ" इस प्रकार याद करनेको स्मृति कहते हैं। किसी पुरुषको पहले देखा था, उसहीको पुनः देखनेसे "यह वही है जो पहिले देखा था" ऐसे जोडरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं। दो पदार्थोंके साथ अथवा क्रमसे रहनेके नियमको व्याप्ति कहते हैं। जिस पदार्थको वादी प्रतिवादीको सिद्ध करनेकी अभिलाषा है, उसको साध्य कहते हैं। साध्यके साथ जिसकी व्याप्ति हो, उसको हेतु कहते हैं। हेतुसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं। असत्य हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। उसके चार भेद हैं—१ असिद्ध, २ विरुद्ध, ३ अनेकांतिक, और ४ अकिंचित्कर। जिस पदार्थमें साध्यकी सिद्धि करनी हो, उसको धर्मी कहते हैं। साध्य और धर्म्मी दोनोंके समुदायको पक्ष कहते हैं। जिस पदार्थमें मौजूदगीका निश्चय होय, उसको सपक्ष कहते हैं। जिस पदार्थमें साध्यके अभावका निश्चय होय उसको विपक्ष कहते हैं। जिस हेतुका धर्मीमें अभाव निश्चित हो, अथवा उसकी मौजूदगीमें संदेह हो उसको असिद्धहेत्वाभास कहते हैं। जिसकी साध्यसे विपरीत पदार्थके साथ व्याप्ति हो, उसको विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। जो हेतु पक्ष सपक्ष विपक्ष तीनोंमें रहनेवाला हो उसको अनेकांतिक कहते हैं। इसहीका दूसरा नाम व्यभिचारी है। असमर्थ हेतुको अकिंचित्कर कहते हैं। उसके दो भेद हैं, सिद्ध साधन, और बाधित विषय। जो सिद्ध पदार्थका साधन करै, उसे सिद्धसाधन कहते हैं। और जिसके साध्यका

अभाव दूसरे प्रमाणसे सिद्ध होय, उसको बाधितविषय कहते हैं। सत्यवँक्ता अर्थात् आप्तके वचन संकेतादिकसे जिसको ज्ञान होय, उसको आगमप्रमाण कहते हैं।

अब लक्षणका कथन किया जाता है। पूर्वाचार्योंनें लक्षणका लक्षण इस प्रकार किया है "**परस्परव्यतिकरे सति येनान्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणम्।**" अर्थात् मिले हुए अनेक पदार्थोंमें एक पदार्थको भिन्न करनेवाले हेतुको लक्षण कहते हैं। जैसे जीवका लक्षण ज्ञान अथवा पुरुषका लक्षण दण्ड। वह लक्षण दो प्रकारका है—एक आत्मभूत और दूसरा अनात्मभूत। जिस लक्षणका लक्ष्यके साथ तादात्म्य सम्बन्ध हो, उसको आत्मभूत कहते हैं, जैसे जीवका ज्ञान। और जिस लक्षणका लक्ष्यके साथ संयोगसम्बन्ध होता है, उसको अनात्मभूत कहते हैं, जैसे पुरुषका दण्ड। जिस पदार्थका लक्षण किया जाय, उसको लक्ष्य कहते हैं। झूठे लक्षणको लक्षणाभास कहते हैं, उसके तीन भेद हैं—१ अव्याप्त, २ अतिव्याप्त, और ३ असम्भवी। जो लक्ष्यके एक देशमें व्यापे, उसको अव्याप्तलक्षणाभास कहते हैं, जैसे जीवका लक्षण रागद्वेष अथवा पशुका लक्षण सींग। जो लक्ष्यमें भी व्यापे और अलक्ष्यमें भी व्यापे, उसको अतिव्याप्त लक्षणाभास कहते हैं, जैसे जीवका लक्षण अरूपी अथवा गौका लक्षण सींग। जो लक्षण लक्ष्यमें सम्भव न हो, उसको असम्भवी कहते हैं। जैसे मनुष्यके सींग। इस प्रकार लक्षणका संक्षेपस्वरूप कहकर अब हम नयका सामान्य तथा विशेषस्वरूप कहना चाहते हैं;—

प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मात्मक हैं, इस कारण वस्तुको अनेकान्तात्मक कहते हैं। अर्थात् वस्तु कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है, कथंचित् सर्वगत है और कथंचित् असर्वगत है। यदि वस्तु सर्वथा नित्य हो, तो वृक्षसे फलपुष्पादिककी अनुत्पत्तिका प्रसङ्ग आवेगा। अथवा सर्वथा अनित्य ही हो, तो प्रत्यभिज्ञान (यह वही है, जो पहिले था) के अभावका प्रसङ्ग आवेगा। अथवा सर्वथा नित्य माननेसे वस्तु अर्थक्रियाकारी सिद्ध नहीं हो सक्ती। और जो अर्थक्रियारहित कूटस्थ है, वह वस्तु ही नहीं हो सक्ती। इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इस कारण वस्तु अनेकान्तात्मक ही है। ज्ञान दो प्रकारका है, एक स्वार्थ और दूसरा परार्थ। जो परोपदेशके विना स्वयं हो उसको स्वार्थ कहते हैं, और जो परोपदेशपूर्वक हो उसको परार्थ कहते हैं। मति, अवधि, मनःपर्यय, और केवल ये चारो ज्ञान स्वार्थ ही हैं। और श्रुतज्ञानं स्वार्थ भी है और परार्थ भी है। जो श्रुतज्ञान श्रोत्रविना अन्य इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक होता है, वह स्वार्थश्रुतज्ञान है। और जो श्रोत्रेन्द्रियजन्य मतिज्ञान पूर्वक होता है, वह परार्थश्रुतज्ञान है। भावार्थ—शब्दको सुनकर उत्पन्न हुआ जो अर्थज्ञान है, उसको परार्थश्रुतज्ञान कहते हैं। कारणके भेदसे कार्यमें भी भेद होता है, इस कारण जब शब्दके अनेक भेद हैं, तो तज्जन्य परार्थश्रुतज्ञानके भी अनेक भेद स्वयंसिद्ध हुए। इस परार्थ श्रुतज्ञानके प्रत्येक भेदको ही नय कहते हैं। और इन समस्त नयोंके समुदायको ही परार्थश्रुतज्ञानरूपी प्रमाण कहते हैं। इस ही कारण प्रमाण और नयमें अंशअंशी भेद है। प्रमाण अंशी है और नय

अंश है। एक शब्दमें इतनी शक्ति नहीं कि, वह एक वस्तुके अनेक धर्मोंका युगपत्निरूपण करसकै; इसलिये नयका सिद्धान्तलक्षण यह है– "वक्ताने अनेकान्तात्मक वस्तुके जिस धर्मकी विवक्षासे शब्द कहा है, उसके उस ही अभिप्रायको जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं।" यह भावनयका लक्षण है। और वह धर्म तथा उस धर्मके वाचक शब्दको द्रव्यनय कहते हैं। सो ही कार्तिकेयस्वामीने कहा है:–

लोयाणं ववहारं धम्म विवक्खाइ जो पसाहेदि। सुयणाणस्स वियप्पो सोवि णओ लिंग संभूदो

अर्थात् धर्मविविक्षासे लोकव्यवहारके साधक लिङ्ग (हेतु) से उत्पन्न श्रुतज्ञानके विकल्पको नय कहते हैं।

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं। तं अणुमाणं भण्णदि तं पि णयं बहु विहं जाण॥

अर्थात् जीव इन्द्रियव्यापार और कायचेष्टाके द्वारा जो जानता है, उसे अनुमान कहते हैं। सो यह भी नय ही है। क्योंकि, अनुमान प्रमाणको भी श्रुतज्ञान ही माना है।

सो चिय इक्को धम्मो वाचयसद्दो वितस्स धम्मस्स। तं जाणदि जं णाणं ते ति वि णय विसेसाय ॥३॥

अर्थात् वह वस्तुका एक धर्म और उस धर्मका वाचक शब्द तथा उस धर्मको जाननेवाला ज्ञान ये तीनों ही नय विशेष हैं। श्रीदेवसेन स्वामीने नयचक्रमें कहा है;—

जं णाणीण वियप्पं सुयभेयं वत्थु अंस संगहणं। तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेण णाणेहिं ॥

तथा पूज्यपादस्वामीने सर्वार्थसिद्धिमें कहा है;–

वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात् साध्यविशेषयाथात्म्यप्रापणप्रवणःप्रयोगो नयः

अर्थात् जो प्रयोग अनेकान्तस्वरूप वस्तुमें अविरूद्धहेतुअर्पणासे साध्य विशेषकी यथार्थता प्राप्त करनेमें समर्थ है, उसको नय कहते हैं। इन सबका सिद्धान्त वही है, जो ऊपर लिखा जा चुका है। जो इतर धर्मोंकी अपेक्षा सहित हैं, वे सुनय हैं और वे ही पदार्थके साधक हैं। और जो इतर धर्मोंसे निरपेक्ष हैं, वे कुनय हैं। उनसे पदार्थकी सिद्धि नहीं होती।

श्रीदेवसेनस्वामीने नयोंकी प्रशंसामें बहुत कुछ कहा है, परन्तु सबका सारांश एक गाथामें इस प्रकार कहा है;—

जे णयदिट्ठि विहूणा
ताण ण वत्थू सहाव उवलद्धी।
वत्थुसहावविहूणा
सम्मादिट्ठी कहं होंति ॥

अर्थात् जो पुरुष नयदृष्टिरहित हैं, उनको वस्तुस्वभावकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। और वस्तुस्वभावकी प्राप्तिके विना सम्यग्दृष्टि किसी प्रकार नहीं हो सक्ते। इसालिये नयोंका सविस्तर विशेष स्वरूप कहते हैं;—

नयके मूलभेद दो हैं, एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय। इस ही व्यवहारनयका दूसरा नाम उपनय है। "निश्चयमिहभूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थं।" इस वचनसे निश्चयका लक्षण भूतार्थ और व्यवहारका लक्षण अभूतार्थ है। अर्थात् जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, यह निश्चयनयका विषय है। और एक पदार्थको परके निमि-

रूपसे व्यवहारसाधनार्थ अन्यरूप कहना व्यवहार-नयका विषय है।

निश्चयनयके दो भेद हैं; एक **द्रव्यार्थिक**, और दूसरा **पर्यायार्थिक**। द्रव्यार्थिक नयका लक्षण **कार्तिकेयस्वामीने** इस प्रकार कहा है;–

जो साहदि सामण्णं
अविणाभूदं विसेसरूवेहिं।
णाणा जुत्तिवलादो
दव्वत्थो सो णओ होदि॥

अर्थात् जो विशेष स्वरूपसे अविनाभावी सामान्य स्वरूपको नाना युक्तिके बलसे साधन करता है, उसको द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

भावार्थ–द्रव्य नाम सामान्यका है, और वस्तुमें सामान्य और विशेष दो प्रकारके धर्म होते हैं। उनमेंसे विशेष स्वरूपोंको गौण करके जो सामान्यका मुख्यतासे ग्रहण करता है, सो द्रव्यार्थिक नय है। और इससे विपरीत पर्यायार्थिकनय है। अर्थात् पर्याय नाम विशेषका है, सो जो वस्तुके सामान्य स्वरूपको गौण करके विशेष स्वरूपका मुख्यतासे ग्रहण करता है, उसको पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके दो दो भेद हैं। **अध्यात्मद्रव्यार्थिक**, **अध्यात्मपर्यायार्थिक**, **शास्त्रीयद्रव्यार्थिक** और **शास्त्रीयपर्यायार्थिक**। इनमेंसे अध्यात्म-द्रव्यार्थिकके दश भेद, और अध्यात्मपर्यायार्थिकके छह भेद हैं। शास्त्रीयद्रव्यार्थिकके तीन भेद, १ नैगम, २ संग्रह, और ३ व्यवहार हैं। जिनमें भी नैगमके तीन भेद, संग्रहके दो भेद, व्यवहारके दो भेद इस प्रकार शास्त्रीयद्रव्यार्थिकके सब सात भेद हुए। शास्त्रीयपर्यायार्थिकके चार भेद हैं। १ऋजुसूत्र, २ शब्द, ३ समभिरूढ, और एवंभूत। इनमें भी ऋजुसूत्र नयके दो भेद और शेष तीनोंके एक एक। सब मिलकर शास्त्रीयपर्यायार्थिकके पांच भेद हुए। इस प्रकार शास्त्रीयनयके बारह भेद और अध्यात्मके सोलह भेद सब मिलकर निश्चयनयके कुल अट्ठाईस भेद हुए। व्यवहारनयके मूलभेद तीनः१ सद्भूत, २ असद्भूत, और ३ उपचरित। इसमें भी सद्भूतके दो, असद्भूतके तीन और उपचरितके तीन भेद, इस प्रकार व्यवहारनयके सब मिलकर आठ भेद हुए। इसमें निश्चयनयके अट्ठाईस भेद मिलानेसे नयके कुल ३६ भेद हुए। अब इनके भिन्न २ लक्षण इस प्रकार जानने चाहिये।

सबसे पहले अध्यात्मद्रव्यार्थिकके दश भेदोंके लक्षण कहते हैं;—

१ जो कर्मबन्धसंयुक्त संसारी जीवको सिद्धसदृश शुद्ध ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधिनिरपेक्ष-शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय** कहते हैं। जैसे; संसारी जीव सिद्धसदृश शुद्ध हैं।

२ जो उत्पादव्ययको गौण करके केवल सत्ताका ग्रहण करता है, उसको **सत्ताग्राहक-शुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,–द्रव्य नित्य है।

३. गुणगुणी और पर्यायपर्यायीमें भेद न करके जो द्रव्यको गुणपर्यायसे अभिन्न ग्रहण करता है, उसको **भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,–अपने गुणपर्यायसे द्रव्य अभिन्न है।

४. जो जीवमें क्रोधादिक भावोंका ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधि-सापेक्ष-अशुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,—जीवको क्रोधी मानी मायावी लोभी आदि कहना।

५. जो उत्पादव्ययमिश्रित सत्ताको ग्रहण करके एकसमयमें त्रितयपनेको ग्रहण करता है, उसको उत्पादव्ययसापेक्ष-अशुद्ध-द्रव्यार्थिक कहते हैं। जैसे,—द्रव्य एक समयमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्ययुक्त है।

६. जो द्रव्यको गुणगुणी आदि भेदसहित ग्रहण करता है, उसको भेदकल्पना-सापेक्ष-अशुद्धद्रव्यार्थिक कहते हैं। जैसे,—दर्शन-ज्ञान आदि जीवके गुण हैं।

७. समस्त गुणपर्यायोंमें जो द्रव्यको अन्वयरूप ग्रहण करता है, उसको अन्वय-द्रव्यार्थिक कहते हैं। जैसे, द्रव्य गुणपर्याय स्वरूप है।

८. जो स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्यको सत्स्वरूप ग्रहण करता है, उसको स्वद्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। जैसे,—स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य है।

९. जो परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्यको असत्स्वरूप ग्रहण करता है, उसको स्वद्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। जैसे,— परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नहीं है।

१०. जो अशुद्धशुद्धोपचाररहित द्रव्यके परमस्वभावको ग्रहण करता है, उसको परमभाव ग्राही-द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। जैसे,—जीवके अनेक स्वभाव हैं, उनमेंसे परमभावज्ञानकी मुख्यतासे जीवको ज्ञानस्वरूप कहना।

ये द्रव्यार्थिक नयके दश भेद हो चुके। अब पर्यायार्थिक नयके छह भेदोंके लक्षण और उदाहरण सुनिये;—

१. जो अनादिनिधन चन्द्रसूर्यादि पर्यायोंको ग्रहण करता है, उसको अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे,— मेरु पुद्गलकी नित्यपर्याय है।

२. कर्मक्षयसे उत्पन्न और कारणभावसे अविनाशी पर्यायको जो ग्रहण करता है, उसको आदि-नित्य-पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे,—जीवकी सिद्धपर्याय नित्य है।

३. जो सत्ताको गौण करके उत्पादव्यय स्वभावको ग्रहण करता है, उसे अनित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे,—पर्याय प्रतिसमय विनश्वर है।

४. जो पर्यायको एक समयमें उत्पादव्यय और ध्रौव्य स्वभावयुक्त ग्रहण करता है, उसको अनित्यअशुद्धपर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे पर्याय एक समयमें उत्पाद-व्यय ध्रौव्य स्वरूप है।

५. जो संसारी जीवोंकी पर्यायको सिद्धसदृश शुद्ध पर्याय ग्रहण करता है, उसको कर्मोपाधिनिरपेक्षअनित्यशुद्धपर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे, संसारी जीवकी पर्याय सिद्धसदृश शुद्ध है।

६. जो संसारी जीवोंकी चतुर्गति सम्बधी अनित्य अशुद्ध पर्यायको ग्रहण करता है, उसको कर्मोपाधिसापेक्षअनित्यअशुद्धपर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे,—संसारी जीव उत्पन्न होते हैं, और विनाशमान होते हैं।

ये पर्यायार्थिक नयके छह भेद हुए। अब नैगमनयके तीनों भेदोंके लक्षण इस प्रकार हैं;—

१. जहां अतीतमें वर्तमानका आरोपण होता है, उसको भूतनैगम कहते हैं। जैसे;—आज दीपोत्सवके दिन महावीर भगवान् मोक्षको गये।

२. जहां भावीमें भूतवत् कथन होता है उसको **भावीनैगमनय** कहते हैं। जैसे अर्हंतोंको सिद्ध कहना ॥

३. जिस कार्यका प्रारंभ कर दिया जाता है और उसमेंसे एक देश तय्यार हुआ हो अथवा बिलकुल तय्यार नहीं हुआ होय उसको तय्यार हुआ एसा कहना **वर्तमान नैगमनय**का विषय है ॥ जैसे कोई पुरुष रसोई करनेके निमित्त, भातके लिये चांवल साफ़ कर रहा है अथवा किसीने भात बनानेकेवास्ते चांवल अग्निपर चढ़ा दिये हैं परन्तु अभी भात तय्यार नहीं हुआ है, किसीने आनकर पूछा कि, महाशय कहिये आज क्या बनाया? तब वह उत्तर देता है कि, "भात बनाया"॥

१. सत् सामान्यकी अपेक्षासे समस्त द्रव्योंको जो एक रूप ग्रहण करता है उसको **सामान्यसङ्ग्रहनय** कहते हैं जैसे सर्व द्रव्य सत्‌की अपेक्षासे परस्पर अविरुद्ध हैं

२. जो एक जाति विशेषकी अपेक्षासे अनेक पदार्थोंको एक रूप ग्रहण करता है उसको **विशेषसङ्ग्रहनय** कहते हैं जैसे चेतनाकी अपेक्षासे समस्त जीव एक हैं।

१. जो सामान्य सङ्ग्रहके विषयको भेद रूप करता है उसको **शुद्धव्यवहारनय** कहते हैं जैसे द्रव्यके दो भेद हैं जीव और अजीव ॥

२. जो विशेष सङ्ग्रहके विषयको भेदरूप करता है उसको **अशुद्धव्यवहारनय** कहते हैं जैसे संसारी और मुक्त जीवके भेद हैं ॥

१. जो एक समयवर्ती सूक्ष्म अर्थ पर्यायको ग्रहण करता है उसको **सूक्ष्मऋजुसूत्रनय** कहते हैं जैसे सर्व शब्द क्षणिक है।

२. अनेक समयवर्ती स्थूल पर्यायको जो ग्रहण करता है उसको **स्थूलऋजुसूत्रनय** कहते हैं जैसे मनुष्यादि पर्याय अपनी आयु प्रमाण तिष्ठे हैं।

१. शब्दनयका लक्षण देवसेन स्वामीने बड़े नयचक्रमें इस प्रकार कहा है।

गाथा–जो वट्टणं ण मण्णइ
एयत्थे भिण्णलिंगआईणं ॥
सो सद्दणओ भणिओ
णेउंपुंसाइयाण जहा ॥ १ ॥
अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ
जं किंपि अत्थ ववहरणं ॥
तं खलु सद्दे विसयं देवो
सद्देण जह देओ ॥ २ ॥

इन दोनों गाथाओंका अभिप्राय यह है कि, एक पदार्थमें भिन्न लिंगादिककी स्थितिको जो नहीं मानता है उसको शब्द नय कहते हैं. भावार्थ—स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिङ्ग, आदि शब्दसे एक वचन, द्विवचन, बहुवचन, संख्या, काल, कारक, पुरुष, उपसर्ग,का ग्रहण करना, एकही पदार्थके वाचक अनेक शब्द होते हैं और उनमें लिङ्ग संख्यादिकका विरोध होता है जैसे पुष्य, तारका, नक्षत्र, ये तीनों लिङ्गके शब्द एकही ज्योतिष्कविमानके वाचक हैं सो इनमें परस्पर व्यभिचार हुआ. परन्तु शब्द नय इस व्यभिचारको नहीं मा-

नता है अथवा व्याकरणसे भिन्न लिङ्गादि युक्त जो शब्द सिद्ध हैं वे जो कुछ अर्थ व्यवहरण करै सोही शब्द नयका विषय है अर्थात् जो शब्दका वाच्य है उसही स्वरूप पदार्थको भेद रूप मानना शब्दनयका विषय है इन दोनों गाथाओंका चरितार्थ एकही है किंतु कथनशैली भिन्न २ है इसका खुलासा इस प्रकार है कि, संसारमें जितने शब्द हैं उतनेही परमार्थरूप पदार्थ हैं एसाही **कार्तिकेय स्वामीने** कहा है.

गाथा–किंवहुणा उत्तेणय जित्तिय
मेत्ताणि संति णामाणि
तित्तियमेत्ता अत्था
संति हि णियमेण परमत्था॥१॥

फिर जो संसारमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द दिखाई देते हैं जैसे इन्द्र, पुरन्दर, शक्र, जल, अप्, भार्या, कलत्र इसका तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक पदार्थमें अनेक शक्ति हैं और एक एक शब्द एक एक शक्तिका वाचक है इसही कारणसे भिन्न लिङ्ग संख्यादि वाचक अनेक शब्दोंका एक पदार्थमें पर्यवसान होना सदोष नहीं हो सकता अर्थात इसमें व्यभिचार नहीं है किन्तु जो जो शब्द जिस जिस शक्तिके वाचक हैं उन २ शक्तिरूप उस पदार्थको भेदरूप मानना यही शब्दनयका विषय है.

१. एक शब्दके अनेक वाच्य है उनमेंसे एक मुख्य वाच्यको किसी एक पदार्थमें देख उसपर आरूढ हो उस पदार्थके अन्य क्रियारूप परिणत होनेपरभी उस पदार्थको अपना वाच्यमाने यह **समभिरूढ नयका** विषय है जैसे गो शब्दके अनेक अर्थ हैं उनमेंसे एक अर्थ गतिमत्व है यह गतिमत्व मनुष्य, हस्ती-घोटक, वलध इत्यादि अनेक पदार्थोंमें है किन्तु वलध पदार्थमेंही आरूढ होकर उस वलधको सोते बैठते आदि अन्य क्रिया करने परभी गो शब्दका वाच्य मानना यही समभिरूढ नयका विषय है

१ जिस क्रियावाचक जो शब्द उसही क्रियारूप परिणत पदार्थका ग्रहण करै उसको **एवंभूतनय** कहते हैं जैसे गौ जिसकालमें गमन करै उसही कालमें उसको गो कहे अन्यक्रिया करते हुए उसे गो न कहे यही एवंभूतनयका विषय है॥

शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीन नय शब्दकी प्रधानता लेकर प्रवर्ते हैं इस कारण इनको **शब्दनय** कहते हैं और नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थकी प्रधानता लेकर प्रवर्ते हैं इस कारण इनको अर्थ नय कहते हैं इस प्रकार निश्च्यनयके २८ भेदोंका कथन समाप्त हुआ अब आगे व्यवहारनयके आठ भेदोंके लक्षण कहते हैं॥

१. एक द्रव्यमें गुण गुणी, पर्याय पर्यायी, कारक कारकवान्, स्वभाव स्वभाववान्, इत्यादि भेदरूप कल्पना करना **शुद्धसद्भूतव्यवहारनयका** विषय है॥

२ अखंड द्रव्यको बहुप्रदेशरूप कल्पना करना **अशुद्धसद्भूतव्यवहारनयका** विषय है

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोपण करना **असद्भूतव्यवहारनयका** विषय है उसके तीन भेद हैं॥

३. सजात्यसद्भूतव्यवहार

४. विजात्यसद्भूतव्यवहार

५. स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहार

इन तीनोंमेंसे प्रत्येकके नौ, नौ भेद होते हैं अर्थात् १ द्रव्यमें द्रव्यका समारोप २ द्रव्यमें गुणका समारोप ३ द्रव्यमें पर्यायका समारोप ४ गुणमें गुणका समारोप ५ गुणमें द्रव्यका समारोप ६ गुणमें पर्यायका समारोप ७ पर्यायमें पर्यायका समारोप ८ पर्यायमें गुणका समारोप ९ और पर्यायमें द्रव्यका समारोप. जैसे चन्द्रमाँके प्रतिबिंबको चन्द्रमाँ कहना यहां सजाति पर्यायमें सजाति पर्यायका समारोप है मतिज्ञानको मूर्त्तक कहना यहां विजाति गुणमें विजाति गुणका समारोप है. जीवाजीवस्वरूप ज्ञेयको ज्ञानका विषय होनेसे ज्ञान कहना सजातिविजातिद्रव्यमें सजातिविजातिगुणका समारोप है परमाणुको बहु प्रदेशी कहना यहां सजातिद्रव्यमें सजातिविभावपर्यायका समारोप है इसही प्रकार अन्य उदाहरण समझने चाहिये अगर कोई यहां शंका करे कि, यह असद्भूतव्यवहार मिथ्या है सो यह शंका निर्मूल है जगत्का व्यवहार इस नयके विना कदापि नहीं चल सकता और यह बात अनुभवसिद्ध है किसी पुरुषने अपने लड़केसे कहा कि, घीका घड़ा लाओ तो यह सुनतेही वह लड़का तुरन्त घीसे भरा हुआ मट्टीका अथवा तांबे, पीतलका घड़ा उठा लाता है यदि यह नय मिथ्या होती तो उस लड़केको उपर्युक्त अर्थज्ञान किस प्रकार हुआ।

अब उपचरितव्यवहारनयका लक्षण कहते हैं इसको उपचरितासद्भूतव्यवहारनयभी कहते हैं।

उवयारा उवयारं
सचा सचे सु उहय अत्थेसु ॥
सज्जाइ इयर मिस्से
उवयरिओ कुणइ ववहारा ॥१॥

अथवा मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते सोपि संबन्धाविनाभावः अर्थात् सत्य, असत्य, उभयरूप, सजातिवि जाति मिश्र पदार्थोंमें उपचारोपचार करे सो उपचरितासद्भूत व्यवहारनय है। भावार्थ—मुख्य पदार्थका अनुभव होते हुए प्रयोजन और निमित्तके वशतें इस नयकी प्रवृत्ति होती है प्रयोजनका अभिप्राय व्यवहारसिद्धि और निमित्तका अभिप्राय विषयविषयी, परिणामपरिणामी, कार्यकारण आदि संबन्ध है।

६. मित्र पुत्रादि बन्धुवर्ग मेरे हैं यह **सजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयका** विषय है।

७. आभरण हेम रत्नादिक मेरे हैं यह **विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयका** विषय है॥

८. देश राज्य दुर्गादिक मेरे हैं यह **मिश्रोपचरितासद्भूतव्यवहारनयका** विषय है इस प्रकार यह व्यवहार नयके आठ भेदोंका कथन हुआ और निश्चय नयके २८ भेदोंका कथन पहिले कर चुके इस प्रकार नयके सब ३६ भेदोंका कथन समाप्त हुआ

अब किसी आचार्यने अध्यात्म भाषासे नयके भेदोंका स्वरूप लिखा है उसे लिखते हैं॥

नयके मूल भेद दो हैं एक **निश्चय** दूसरा **व्यवहार**

१. जिसका अभेदरूप विषय है उसको **निश्चयनय** कहते हैं।

२. जिसका भेदरूप विषय है उसको **व्यवहारनय** कहते हैं।

निश्चयनयके दो भेद हैं एक **शुद्धनिश्चयनय** दूसरा **अशुद्धनिश्चयनय** ।

१. जो निरूपाधिक गुण गुणीको अभेद रूप ग्रहण करता है उसको **शुद्धनिश्चयनय** कहते हैं. जैसे जीव केवलज्ञानस्वरूप है।

२. जो सोपाधिक गुण गुणीको अभेदरूप ग्रहण करता है उसको **अशुद्धनिश्चयनय** कहते हैं जैसे जीव मतिज्ञानस्वरूप है॥

व्यवहार नयकेभी दो भेद हैं एक **सद्भूतव्यवहारनय** और दूसरा **असद्भूतव्यवहारनय** ।

जो एक पदार्थमें गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **सद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं. उसकेभी दो भेद हैं एक **उपचरितसद्भूत** दूसरा **अनुपचरितसद्भूत**

३. जो सोपाधिक गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **उपचरितसद्भूत व्यवहार** कहते हैं जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं.

४. जो निरूपाधिक गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **अनुपचरितसद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं जैसे जीवके केवलज्ञानादिक गुण हैं।

जो भिन्न पदार्थको अभेद रूप ग्रहण करता है उसको **असद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं उसकेभी दो भेद हैं एक **उपचरितासद्भूतव्यवहार** दूसरा **अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनय**

५. जो संश्लेष रहित वस्तुको अभेद रूप ग्रहण करता है उसे **उपचरितासद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं जैसे आभरणादिक मेरे हैं।

६. जो संश्लेष सहित वस्तुको अभेदरूप ग्रहण करता है उसे **अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं जैसे शरीर मेरा है

यद्यपि ये छह भेद किसी आचार्यने अध्यात्म सम्बन्धमें संक्षेपसे कहे हैं परन्तु ये छह भेद प्रथम कहे हुए २६ भेदोंमेंसे किसी न किसी भेदमें गर्भित हो जाते हैं अर्थात् शुद्ध निश्चयनय भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकमें अशुद्धनिश्चयनय कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकमें उपचरितसद्भूतव्यवहारनय असद्भूतव्यवहारनयमें अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय शुद्धसद्भूतव्यवहारनयमें अनुपचरित और उपचरितासद्भूतव्यवहारनय उपचरित (उपचरितासद्भूत) व्यवहारनयमें गर्भित हैं इस प्रकार नयका कथन समाप्त हुआ.

अब आगे निक्षेपका कथन इस प्रकार है प्रथमही निक्षेप सामान्यका लक्षण कहते हैं।

गाथा—जुत्तीसुजुत्तमग्गे
जंचउभेयेण होइ खलु ठवणं
कज्जे सदिणामादिसु
तं णिक्खेवं हवे समए ॥

युक्ति करके सुयुक्तमार्ग होते हुए कार्यके वशतें नाम स्थापना द्रव्य और भावमें पदार्थके स्थापनको **निक्षेप** कहते हैं. भावार्थ एक द्रव्यमें अनेक स्वभाव हैं. इसलिये अनेक स्वभावोंकी अपेक्षासे उसका विचारभी अनेक प्रकारसे होता है. अतएव उस द्रव्यके मुख्य चार भेद किये हैं. अर्थात् १ नामनिक्षेप २ स्थापनानिक्षेप ३ द्रव्यनिक्षेप ४ भावनिक्षेप.

१ जिस पदार्थमें जो गुण नहीं है उसको उस नामसे कहना **नामनिक्षेप** है. जैसे किसीने अपने लड़केका नाम हाथीसिंह रक्खा है परन्तु उस लड़केमें हाथी और सिंहके गुण नहीं है.

२ साकार अथवा निराकार पदार्थमें वह यह है इस प्रकार अवधान करके निवेश करना उसको **स्थापनानिक्षेप** कहते हैं. जैसे पार्श्वनाथके प्रतिबिंबको पार्श्वनाथ कहना अथवा पुष्पमें अर्हंतकी स्थापना करना स्थापनानिक्षेपमें मूल पदार्थवत् सत्कार पुरस्कारकी प्रवृत्ति होती है. किन्तु नामनिक्षेपमें नहीं होती, जैसे किसीने अपने लड़केका नाम पार्श्वनाथ रखलिया तो उस लड़केका पार्श्वनाथवत् सत्कार पुरस्कार नहीं होता किन्तु प्रतिमामें होता है.

३ जो पदार्थ अनागतपरिणामकी योग्यता रखनेवाला होता है उसको **द्रव्यनिक्षेप** कहते हैं जैसे राजाका पुत्र आगामी कालमें राजा होनेके योग्य है इस कारण राजपुत्रको राजाका द्रव्यनिक्षेप कहते हैं उस द्रव्यनिक्षेपके दो भेद हैं, एक आगमद्रव्यनिक्षेप और दूसरा नोआगमद्रव्यनिक्षेप.

१ निक्षेप्य पदार्थके प्ररूपक शास्त्रके उपयोगरहित ज्ञाताको **आगमद्रव्यनिक्षेप** कहते हैं. जैसे कि, सुदर्शनमेरूका स्वरूप निरूपण करनेवाला त्रैलोक्य-सार ग्रन्थ है उस त्रैलोक्य-सार ग्रन्थका जाननेवाला पुरुष जिस काल सुदर्शनमेरूके कथनमें उपयुक्त (उपयोगसहित) नहीं है उस कालमें उस जीवको सुदर्शनमेरूका **आगमद्रव्यनिक्षेप** कहते हैं इसही प्रकार दूसरे जीवादिक पदार्थोंपरभी लगाना.

२ नोआगमद्रव्यनिक्षेपके तीन भेद हैं. १ ज्ञायक शरीर २ भावी ३ तद्व्यतिरिक्त.

१ निक्षेप्यपदार्थ निरूपक शास्त्रके अनुपयुक्त ज्ञाताके शरीरको **ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यनिक्षेप** कहते हैं. जैसे जीव पदार्थका प्ररूपक जो शास्त्र है उस शास्त्रके अनुपयुक्त ज्ञाताके शरीरको जीवका ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यनिक्षेप कहते हैं उस शरीरकेभी तीन भेद हैं. १ भूत २ भविष्यत् ३ वर्तमान.

१ जिस शरीरको छोड़कर ज्ञाता आया है उसको **भूत** शरीर कहते हैं.

२ जिस शरीरको ज्ञाता आगामी कालमें धारण करैगा उसको **भविष्यत्** शरीर कहते हैं.

३ ज्ञाताके वर्तमान शरीरको **वर्तमान** कहते हैं.

भूत शरीरके तीन भेद हैं. १ च्युत २ च्यावित ३ त्यक्त.

१ जो शरीर अपनी आयु पूर्ण करके छूटे उसको **च्युत** कहते हैं.

२ जो विषभक्षणादि निमित्तवश अकालमृत्युद्वारा शरीर छूटता है उसको **च्यावित** शरीर कहते हैं.

३ जो शरीर सन्यासमरणसे छूटता है उसको **त्यक्त** कहते हैं.

२ निक्षेप्य पदार्थके उपादान कारणको **भावीनोआगमद्रव्यनिक्षेप** कहते हैं. जैसे अर्हंत सिद्धोंके अथवा देवायुबद्धमनुष्य देवका भावीनोआगमद्रव्यनिक्षेप हैं.

३ तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेपके दो भेद हैं. १ कर्म २ नोकर्म.

१ जिस कर्मकी जो अवस्था निक्षेप्यपदार्थकी उत्पत्तिको निमित्तभूत है उसही अवस्थाको प्राप्त वह कर्म निक्षेप्यपदार्थका **कर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेप** कहलाता है.

२ उस कर्मकी उस अवस्थाको वाह्यकारण निक्षेप्यपदार्थका **नोकर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेप** कहलाता है जैसे क्षयोपशम अवस्थाको प्राप्त मतिज्ञानावरणकर्म मतिज्ञानका कर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेप है और पुस्तकाभ्यास दुग्ध वादाम वगैरह मतिज्ञानका नोकर्म तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेप है.

४ वर्तमानपर्याय संयुक्तवस्तुको **भावनिक्षेप** कहते हैं. जैसे राज करतेको राजा कहना अथवा सम्यग्दर्शनयुक्तको सम्यग्दृष्टी कहना. इसकेभी दो भेद हैं. १ आगमभावनिक्षेप २ नोआगमभावनिक्षेप.

१ निक्षेप्यपदार्थस्वरूपनिरूपकशास्त्रके उपयोग विशिष्ट ज्ञाता जीवको **आगमभावनिक्षेप** कहते हैं जैसे उपयोगसहित पंचास्तिकाय शास्त्रका ज्ञाता जीव पंचास्तिकायका आगमभावनिक्षेप है.

२ तत्पर्याय करके युक्त वस्तुको **नोआगमभावनिक्षेप** कहते हैं जैसे मनुष्यपर्याय संयुक्त जीव मनुष्यका नोआगमभावनिक्षेप है इस प्रकार निक्षेपका कथन समाप्त हुआ.

इति भूमिका समाप्ता।

श्रीवीतरागाय नमः

जैनसिद्धान्तदर्पण

पूर्वार्ध.

प्रथम अधिकार

(द्रव्यसामान्यनिरूपण)

मङ्गलाचरण.

नत्वा वीरजिनेन्द्रं सर्वज्ञं मुक्तिमार्गनेतारम् ।
वालप्रबोधनार्थं जैनं सिद्धान्तदर्पणं वक्ष्ये ॥

द्रव्यका सामान्य लक्षण पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है ।

गाथा—दवदि दविस्सदि दविदं जं सब्भावे विहावपज्जाए ।
तं णह जीवो पोग्गल धम्माधम्मं च कालं च १
तिक्काले जं सत्तं वट्टदि उप्पादवयधुवत्तेहिं ॥
गुणपज्जायसहावं अणादि सिद्धं खु तं हवे दव्वं २

१ अर्थात् जो स्वभाव अथवा विभाव पर्यायरूप परिणमें है, परिणमेगा, और परिणम्या सो आकाश, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल भेदरूप द्रव्य है । अथवा २ जो तीन कालमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वरूपसत्कारिसहित होवे उसे द्रव्य कहते हैं. तथा ३ जो गुणपर्यायसहित अनादि सिद्ध होवे उसे द्रव्य कहते हैं इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण कहे हैं. उनमेंसे पहला लक्षण द्रव्य शब्दकी व्युत्पत्तिकी मुख्यता लेकर कहा है. इस लक्षणमें स्वभावपर्याय और विभावपर्याय ये दो पद आये हैं उनको स्पष्ट करनेके लिये प्रथमही पर्यायसामान्यका लक्षण कहते हैं ।

द्रव्यमें अंशकल्पनाको पर्याय कहते हैं. उस अंश कल्पनाके दो भेद हैं एक देशांशकल्पना दूसरी गुणांशकल्पना ।

देशांशकल्पनाको द्रव्यपर्याय कहते हैं यदि कोई यहां ऐसी शंका करै कि, जब गुणोंका समुदाय है सोही द्रव्य है गुणोंसे भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं है इसलिये द्रव्यपर्यायभी कोई पदार्थ नहीं हो सकता । (समाधान) यद्यपि गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है परन्तु समस्त गुणोंके पिण्डको देश कहते हैं और प्रत्येकगुण समस्त देशमें व्यापक होता है इस कारण देशके एक अंशमें समस्त गुणोंका सद्भाव है एसी

अवस्थामें उसको एक गुणकी पर्याय नहीं कह सकते अर्थात् उस देशांशमें समस्त गुण हैं और समस्त गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं इस लिये देशांशोंको द्रव्यपर्याय कहनाही समुचित होता है गुणांशकल्पनाको गुणपर्याय कहते हैं गुणपर्यायके दो भेद हैं एक अर्थगुणपर्याय दूसरा व्यंजनगुणपर्याय ।

१ ज्ञानादिक भाववती शक्तिके विकारको **अर्थगुणपर्याय** कहते हैं ।

२ प्रदेशवत्वगुणरूपक्रियावतीशक्तिके विकारको **व्यंजनगुणपर्याय** कहते हैं इसही व्यंजनगुणपर्यायको द्रव्यपर्यायभी कहते हैं क्योंकि, व्यंजनगुणपर्याय द्रव्यके आकारको कहते हैं । सो यद्यपि यह आकार प्रदेशवत्वशक्तिका विकार है इसलिये इसका मुख्यतासे प्रदेशवत्वगुणसे संम्बध होनेके कारण इसे व्यंजनगुणपर्यायही कहना उचित है. तथापि गौणतासे इसका देशकेसाथभी संबंध है इसलिये देशांशको द्रव्यपर्यायकी उक्तिकी तरह इसकोभी द्रव्यपर्याय कहसक्ते हैं। अब आगे जहां द्रव्यपर्याय अथवा व्यंजनपर्याय शब्द आवे तो इन शब्दोंसे व्यंजनगुणपर्याय समझना और गुणपर्याय अथवा अर्थपर्याय शब्दोंसे अर्थगुणपर्याय समझना इन दोनोंके स्वभाव और विभावकी अपेक्षासे दो दो भेद हैं अर्थात् १ स्वभावद्रव्यपर्याय २ विभावद्रव्यपर्याय ३ स्वभावगुणपर्याय ४ विभावगुणपर्याय ।

जो निमित्तांतरकेबिना होवे उसे **स्वभाव** कहते हैं. और जो दूसरेके निमित्तसे होय उसको **विभाव** कहते हैं. जैसे कर्मरहित शुद्ध जीवके जो ज्ञान दर्शन सुख वीर्य हैं वे जीवके **स्वभावगुणपर्याय** हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कवधिज्ञान ये जीवके **विभावगुणपर्याय** हैं ।

मुक्तजीवके जो अंतिम शरीरके आकार प्रदेश हैं सो जीवकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** है संसारी जीवका जो शरीराकार परिणाम है उसको जीवकी **विभावद्रव्यपर्याय** कहते हैं।

परमाणुमें जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, होते हैं वे पुद्गलकी **स्वभावगुणपर्याय** हैं. स्कन्धोंमें जो स्पर्श रस गन्ध वर्ण होते हैं वे पुद्गलकी **विभावगुणपर्याय** हैं ।

जो अनादिनिधन कार्यरूप अथवा कारणरूप पुद्गलपरमाणु हैं सो पुद्गलकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** है पृथिवी, जलादिक जो नानाप्रकारके स्कन्ध हैं वे पुद्गलकी **विभावद्रव्यपर्याय** हैं विभावपर्याय जीव और पुद्गलमेंही होती है ।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यमें स्वभावपर्यायही होती हैं विभावपर्याय नहीं होती।

धर्मद्रव्यमें गतिहेतुत्व अधर्मद्रव्यमें स्थितिहेतुत्व आकाशद्रव्यमें अवगाहहेतुत्व कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व **स्वभावगुणपर्याय** हैं ।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य जिस जिस प्रकारसे संस्थित हैं वे उनकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** हैं।

समस्त द्रव्योंमें अगुरुलघुगुणका जो परिणमन होता है वे सब द्रव्योंकी **स्वभावगुणपर्याय** हैं।

आगे द्रव्यके दूसरे सत्‌लक्षणका स्वरूप लिखते हैं।

सत् सत्ता अस्तित्व ये तीनों द्रव्यकी एक शक्ति विशेषके वाचक हैं। गुणगुणीकी भेदविवक्षासे द्रव्यका लक्षण सत् है। और गुणगुणीकी अभेदविवक्षासे द्रव्य सन्मात्र है अर्थात् स्वतः सिद्ध है अतएव अनादिनिधन स्वसहाय और निर्विकल्प है। ऐसा नहीं माननेसे १ असत्‌की उत्पत्ति २ सत्‌का विनाश ३ युतसिद्धत्व ४ परतःप्रादुर्भाव ये चार दोष उपस्थित होते हैं।

१ **असत्‌की उत्पत्ति** माननेसे द्रव्य अनन्त होजांयगे और मृत्तिकाकेविनामी घटकी उत्पत्ति होने लगेगी।

२ **सत्‌का विनाश** माननेसे एक२ पदार्थका नाश होते२ कदाचित् सर्वाभावका प्रसङ्ग आवेगा।

३ **युतसिद्धत्व** माननेसे गुण और गुणीके पृथक्प्रदेशपना ठहरेगा और ऐसी अवस्थामें गुण और गुणी इन दोनोंके लक्षणके अभावका प्रसङ्ग आवेगा। और लक्षणकेविना वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होसक्ता इस कारण गुण और गुणी दोनोंके अभावका प्रसङ्ग आता है भावार्थ—लक्षणके दो भेद हैं एक अनात्मभूत दूसरा आत्मभूत जो लक्ष्यसे अभिन्नप्रदेशवाला होता है उसको आत्मभूत कहते है जैसे अग्निका उष्णपना। और जो लक्ष्यसे भिन्न प्रदेशवाला होता है उसको अनात्मभूत कहते हैं जैसे पुरुषका लक्षण दण्ड जिसप्रकार दण्ड लम्बाई, गोलाई, चिकनाई आदि लक्षणोंसे भिन्न सत्तावाला सिद्ध है। और हस्तपादादि लक्षणोंसे पुरुष भिन्नसत्तावाला सिद्ध है। इसप्रकार अग्नि और उष्णताके भिन्न२ लक्षण न होनेके कारण भिन्न२ सत्तावाले सिद्ध नहीं होसकते क्योंकि, अग्निसे भिन्न उष्णता और उष्णतासे भिन्न अग्नि प्रतीतिअगोचर है। इसही प्रकार सत्‌द्रव्यका आत्मभूत लक्षण है युतसिद्ध नहीं है। युतसिद्ध माननेमें अग्नि और उष्णताकी तरह द्रव्य और सत् दोनोंके अभावका प्रसङ्ग आता है अथवा थोड़ी देरकेलिये मानभी लिया जाय कि, गुण और गुणी भिन्न हैं अर्थात् जीव और ज्ञान भिन्न२ हैं पीछे समवाय पदार्थके निमित्तसे दोनोंका सम्बन्ध हुआ है तो जीव और ज्ञानका सम्बन्ध होनेसे पहले जीव ज्ञानी था कि, अज्ञानी? यदि कहोगे कि, ज्ञानी था तो ज्ञानगुणका सम्बन्ध नि-

ष्फल हुआ। यदि अज्ञानी था तो अज्ञानगुणके सम्बन्धसे अज्ञानी था अथवा स्वभावसे? यदि स्वभावसे अज्ञानी था तो स्वभावसे ज्ञानी माननेमें क्या हानि है यदि अज्ञान गुणके सम्बन्धसे अज्ञानी है तो अज्ञानगुणके सम्बन्धसे पहले अज्ञानी था कि, ज्ञानी यदि अज्ञानी था तो अज्ञानगुणका सम्बन्ध निष्फल हुआ यदि कहो कि, ज्ञानी था तो ज्ञानका समवाय तो हैही नहीं! ज्ञानी किसप्रकार कह सकते हो इसही प्रकार यदि जीवमें ज्ञानके सम्बन्धसे जाननेकी शक्ति है तो ज्ञानमें किसके सम्बन्धसे जाननेकी शक्ति है यदि कहोगे कि, ज्ञानमें स्वाभावसे जाननेकी शक्ति है तो जीवमें स्वभावसे जाननेकी शक्ति माननेमें क्या हानि है। यदि कहोगे कि, ज्ञानमें ज्ञानत्वके सम्बन्धसे जाननेकी शक्ति है तो ज्ञानत्वमेंभी किसी दूसरेकी और उसमेंभी किसी औरकी आवश्यकता होनेसे अनवस्थादोष आवेगा यदि यहां कोई इसप्रकार शंका करे कि, समवाय नामक अयुतसिद्धलक्षण सम्बन्ध है उसके निमित्तसे अभिन्नसदृश गुणगुणी प्रतीत होते हैं ज्ञानत्वके समवायसे ज्ञानमें जाननेकी शक्ति है और ज्ञानगुणके समवायसे जीव ज्ञानी है। सोभी ठीक नहीं है क्योंकि एसा कोई नियामक नहीं है कि, ज्ञानगुणका जीवसेही सम्बन्ध होय आकाशादिकसे न होय। उष्ण गुणका अग्निकेही साथ सम्बन्ध होय जलादिकके साथ न होय यदि कहोगे, कि, इस सम्बन्धमें स्वभावहेतु है तो इससे गुण गुणीका परिणामही सिद्ध होता हैं भावार्थ-गुणोंका समुदाय है सोही गुणी है समुदायसमुदायीकी अपेक्षा गुणगुणीमें भेद है। प्रदेश अपेक्षा भेद है। सिवाय इसके समवायरूप भिन्नपदार्थभी सिद्ध नहीं होता क्योंकि, द्रव्यगुणकी जब समवाय सम्बन्धसे वृत्ति मानते हो तो समवायरूप भिन्न पदार्थकी द्रव्यादिककेसाथ किस सम्बन्धसे वृत्ति मानोगे यदि समवायन्तरसे मानोगे तो उसके वास्तेभी फिर दूसरे और दूसरेकेवास्ते किसी अन्यकी आवश्यकता होनेसे अनवस्था दोष आवैगा। यदि कहो कि संयोग सम्बन्धसे समवायकी वृत्ति मानेगें सोभी ठीक नहीं है क्योंकि, समवायका द्रव्यादिककेसाथ युतसिद्ध सम्बन्ध नहीं है। और संयोगसम्बन्ध युतसिद्धमेंही होता है। क्योंकि, युतसिद्ध पदार्थोंकी अप्राप्तिपूर्वक प्राप्तिकोही संयोग कहते हैं। संयोगसम्बन्ध और समवायसम्बन्धसे विलक्षण तीसरा कोई सम्बन्ध नहीं है इसकारण समवाय खरविषाणवत् कोई पदार्थही नहीं है। जिनमतमें दो सम्बन्ध माने हैं एक संयोग्यसम्बन्ध दूसरा तादात्म्यसम्बन्ध भिन्नप्रदेश पदार्थोंके सम्बन्धको संयोगसम्बन्ध कहते हैं जैसे दूध और पानी और अभिन्न प्रदेश पदार्थोंके सम्बन्धको तादात्म्यसम्बन्ध कहते हैं जैसे अग्नि और उष्णता यह तादात्म्य सम्बन्धही जिनमतका समवायसम्बन्ध है इसप्रकार युतसिद्धत्व माननेमें अनेक दोष आते हैं।

४ **परतःप्रादुर्भाव** माननेमें उसकी उत्पत्ति उससे और उसकी उससे इसप्रकार

अनवस्थादोष आवैगा इसकारण द्रव्यका पूर्वोक्त लक्षण निर्दोष है। अब आगे सत्ताका विशेष स्वरूप कहते हैं

पहले अनन्तशक्तियोंके समुदायको द्रव्य कह आए हैं। उनही अनन्तशक्तियोंमेंसे जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभीभी अभाव नहीं होता। उसको सत्ता, सत्, और अस्तित्व इन तीन शब्दोंसे कहते है वह सत्ता समस्त पदार्थोंमें है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे उस सत्ताके दो भेद हैं। एक सत्तासामान्य और दूसरी सत्ताविशेष सत्तासामान्यका दूसरा नाम महासत्ता है और सत्ताविशेषका दूसरा नाम अवान्तरसत्ता है महासत्ता अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत्ता है किन्तु अवान्तरसत्ताकी अपेक्षासे सत्ता नहीं है अर्थात् असत्ता है इसही प्रकार अवान्तर सत्ताभी महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत्ता है महासत्ता सकलपदार्थोंमें रहनेवाली है इसकारण इसको "**सर्वपदार्थस्थिता**" कहते हैं। अवान्तर सत्ता एक पदार्थमें रहनेवाली है इसकारण उसको "**एकपदार्थस्थिता**" कहते हैं क्योंकि, प्रतिनियत पदार्थमें स्थितसत्तासेही पदार्थोंका प्रतिनियम होता है।

महासत्ता समस्तपदार्थोंके समस्तस्वरूपोंमें विद्यामान है इसकारण इसको "**सविश्वरूपा**" कहते हैं प्रतिनियत एकरूपसत्तासेही पदार्थोंका प्रतिनियत एकरूपपना होता है इसकारण अवान्तर सत्ताको "**एकरूपा**" कहते हैं।

महासत्ता पदार्थोंकी अनन्तपर्यायोंमें विद्यमान है इसकारण इसको "**अनन्तपर्याया**" कहते हैं. प्रतिनियतपर्यायसत्तासेही प्रतिनियत एक एक पर्यायके समूहसे पर्यायोंकी अनन्तता होती है इसकारण अवान्तरसत्ताको "**एकपर्याया**" कहते हैं।

महासत्ता समस्तपदार्थोंकी सादृश्यसूचिका है इसकारण उसको "**एका**" कहते हैं.

एक वस्तुकी जो स्वरूपसत्ता है वही दूसरीवस्तुकी स्वरूपसत्ता नहीं हैं इसकारण अवान्तरसत्ताको "**अनेका**" कहते हैं।

वस्तु न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा क्षणिक है जो वस्तुको सर्वथा नित्य मानिये तो प्रत्यक्षसे वस्तु विकारसहित दीखती है इसकारण सर्वथा नित्य नहीं मानसकते और जो वस्तुको सर्वथा क्षणिक मानिये तो प्रत्यभिज्ञान (यह पदार्थ वही है जो पहिले था) के अभावका प्रसंग आवेगा इसकारण प्रत्यभिज्ञानको कारणभूत किसी स्वरूपकरके ध्रौव्यको अवलम्बन करनेवाली और क्रमप्रवृत्त किसी स्वरूपकरके उपजती और किसी स्वरूपकरके विनसती एकही काल तीन अवस्थाओंको धारण करनेवाली वस्तुको सत् कहते है अतएव महासत्ताकोभी "**उत्पादव्ययध्रौव्यात्मिका**" समझना क्योंकि, भाव (सत्) और भाववान् (द्रव्य) में कथंचित् अभेद है वस्तु जिसस्वरूपसे उत्पन्न होती है उसस्वरूपसे उसका

व्यय और ध्रौव्य नहीं है जिसस्वरूपसे वस्तुका व्यय है उसस्वरूपसे उत्पाद और ध्रौव्य नहीं हैं जिसस्वरूपसे ध्रौव्य है उसस्वरूपसे उत्पाद और व्यय नहीं है इसकारण अवान्तरसत्ता एक एक लक्षणरूप है त्रिलक्षणस्वरूप नहीं है इसकारण उसे "**अत्रिलक्षणा**" कहते है सोई कुन्दकुन्दस्वामीने कहा है.

गाथा–सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
उप्पादव्वयधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एगा॥ १॥

अब उत्पादव्यय ध्रौव्यका विशेष स्वरूप लिखते है.

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, ए तीनों द्रव्यके नहीं होते किन्तु पर्यायोंके होते हैं परन्तु पर्याय द्रव्यकाही स्वरूप है इसकारण द्रव्यकोभी उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप कहा है पारिणमन स्वरूप द्रव्यकी नूतन अवस्थाको उत्पाद कहते है परन्तु यह उत्पादभी द्रव्यका स्वरूपही है इसकारण यहभी द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे सत् और असत् भावकरके निवद्ध है व्ययभी द्रव्यका नहीं होता किन्तु वह व्यय द्रव्यकी अवस्थाका व्यय है इसकोही "**प्रध्वंसाभाव**" कहते हैं सो परिणामी द्रव्यके यह प्रध्वंसाभाव अवश्यही होना चाहिये द्रव्यका ध्रौव्यस्वरूप है सो कथंचित् पर्ययार्थिक नयकी अपेक्षासे है केवल द्रव्यकाही ध्रौव्य नहीं है किन्तु उत्पाद और व्ययकी तरह यह ध्रौव्यभी एक अंश है सर्वांश नहीं है पूर्वाचार्योंने जो "**तद्भावाव्ययंध्रौव्यम्**" यह ध्रौव्यका लक्षण कहा है उसकाभी स्पष्टार्थ यही है कि, जो परिणाम पहिले है वही परिणाम पीछे है जैसे पुष्पका गन्ध परिणाम है और वह गन्ध गुणभी परिणामी है अपरिणामी नहीं है परन्तु ऐसा नहीं है कि, पहिले पुष्पगन्धरहित था और पीछे गन्धवान् हुआ जो परिणाम पहिले था वही पीछे है इसहीका नाम ध्रौव्य है इनमेंसे व्यय और उत्पाद यह दोनों अनित्यताके कारण हैं और ध्रौव्य नित्यताका कारण है यहां कोई एसा समझे. कि द्रव्यमें सत्व अथवा कोईगुण सर्वथा नित्य है और व्यय और उत्पाद ए दोनों उससे भिन्न परणतिमात्र हैं एसा नहीं है। क्योंकि, एसा होनेसे सब विरुद्ध होजाता है प्रदेशभेद होनेसे न गुणकी

---

(१) जिनमतमें चार अभाव माने हैं. १ प्रागभाव. २ प्रध्वंसाभाव. ३ अन्योन्याभाव. और ४ अत्यंताभाव. द्रव्यकी वर्त्तमानसमयसम्बन्धी पर्यायका वर्तमानसमयसे पहिले जो अभाव है उसको **प्रागभाव** कहते हैं। तथा उसहीका वर्त्तमानसमयसे पीछे जो अभाव है उसे **प्रध्वंसाभाव** कहते हैं। द्रव्यकी एक पर्यायके सजातिय अन्यपर्यायमें अभावको **अन्योऽन्याभाव** कहते हैं. और उसहीके विजातीयपर्यायमें अभावको **अत्यंताभाव** कहते हैं जैसे घटोत्पत्तिसे पहिले घटकाप्रागभाव है घटविनाशसे पीछे घटकाप्रध्वंसाभाव है घटकापटमें अन्योऽन्याभाव है और घटकाजीवमें अत्यंताभाव है.

सिद्धि होती है न द्रव्यकी, न सत्की और न पर्यायकी, किन्तु इसके सिवाय यह दोष और आवैगा कि, जो नित्य है वह नित्यही रहैगा और जो अनित्य है वह अनित्यही रहैगा क्योंकि, एकके परस्पर विरुद्ध अनेक धर्म नहीं होसकते और एसी अवस्था मैं द्रव्यान्तरकी तरह द्रव्यगुणपर्याय मैं एकत्व कल्पनाके अभावका प्रसङ्ग आवैगा. यदि कोई कहै कि, समुद्रकी तरह द्रव्य और गुण नित्य हैं और पर्याय कल्लोलोंकी तरह उपजती विनसती हैं सोभी ठीक नहीं है. क्योंकि, यह दृष्टान्त प्रकृतका बाधक और उसके विपक्षका साधक है कारण इस दृष्टान्तकी उक्तिसै समुद्र कोई भिन्न पदार्थ है जो नित्य है और कल्लोल कोई भिन्न पदार्थ हैं जो उपजता है और विनसता हैं एसा प्रतीत होता है किन्तु वास्तवमें पदार्थका स्वरूप एसा है कि, कल्लोलमालाओंके समूहकाही नाम समुद्र है जो समुद्र है सोही कल्लोलमाला हैं. स्वयंसमुद्रही कल्लोलस्वरूप परिणमै है इसही प्रकार जो द्रव्य है सोही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वरूप है स्वयं द्रव्य (सत्) उत्पादस्वरूप व्ययस्वरूप और ध्रौव्यस्वरूप परिणमै है सत् (द्रव्य) से अतिरिक्त उत्पाद-व्यय ध्रौव्य कुछभी नहीं हैं भेद विकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासै उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण, और पर्याय कुछभी नहीं हैं केवल मात्र सत् (द्रव्य) है और भेदकल्पनासापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासै वही सत्, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीन स्वरूप हो जाता है और जो इस भेद विवक्षाको छोड़ देते तो फिर वही सन्मात्रवस्तु रह जाती है. अब यदि यहां कोई शङ्का करै कि, उत्पाद और व्यय ये दोनों अंश होसकते हैं परन्तु ध्रौव्य तौ त्रिकालविषयिक है इसकारण वह किसप्रकार अंश कहा जावै सो यह शङ्का उचित नहीं है एसा नहीं है कि, सत् एक पदार्थ है और उत्पाद व्यय ध्रौव्य उसके तीन अंश हैं जैसे वृक्ष एक पदार्थ है और फलपुष्पादि उसके अंश हैं इसप्रकार उत्पादादिक सत्के अंश नहीं हैं किन्तु स्वयंसतही प्रत्येक अंशस्वरूप है यदि सत् (द्रव्य) उत्पादलक्ष्य है अथवा उत्पादस्वरूप परिणमै है तो वस्तु केवल उत्पाद मात्र है यदि वस्तु व्ययलक्ष्य है अथवा व्ययनियत है तो वस्तु केवल व्ययमात्र है यदि वस्तु ध्रौव्यलक्ष्य है अथवा ध्रौव्यस्वरूप परिणत है तो वस्तु ध्रौव्य मात्र है जैसे मृत्तिका यदि सत्स्वरूपघटलक्ष्य है तो मृत्तिका केवल घटमात्रही है यदि असत् स्वरूप पिण्डलक्ष्य है तो मृत्तिका केवल पिण्डमात्र है और यदि मृत्तिका केवल मृत्तिकापनेकर लक्ष्य है तो मृत्तिका केवल मृत्तिकात्व मात्र है इसप्रकार सत्के उत्पादादिक तीन अंश हैं एसा नहीं है कि, वृक्षमें फलपुष्पकी तरह किसीएक भागस्वरूप अंशसे सत्का उत्पाद है तथा किसी एक एक भाग स्वरूप अंशसै व्यय और ध्रौव्य है अब यहां फिर कोई शंका करै कि, ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य अंशोंके हैं

कि अंशीके अथवा सत्के अंशमात्र है अथवा असत् अंश भिन्न है इसका समाधान इसप्रकार है कि, यदि इनपक्षोंको सर्वथा एकान्तस्वरूप मानाजाय तो सब विरुद्ध है और इनहीको जो अनेकान्तपूर्वक किसी अपेक्षा विशेषसे माना जाय तो सर्व अविरुद्ध है केवल अंशोंका अथवा केवल अंशीका न उत्पाद है न व्यय है और न ध्रौव्य है किन्तु अंशीका अंश करके उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है अब यहां फिर कोई शंका करता है कि, एकही पदार्थके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीन धर्म कहते हो सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है इसमें कोई युक्तिभी है अथवा वचनमात्रसेही सिद्ध है. उसका समाधान इसप्रकार है कि, यदि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंमें क्षणभेद होता अथवा स्वयंसतही उपजता ओर स्वयंसतही विनसता तो यह विरोध आता सो एसा कभी किसीके किसीप्रकार न हुआ और न होय क्योंकि, इसका साधक न कोई प्रमाण है और न कोई दृष्टान्त है किन्तु वही सत् (द्रव्य) पूर्वसमयमें एकरूप था सो दूसरे समयमें सत्का वही एकरूप अन्यस्वरूप होगया है न तो सत्का नाश हुआ और न सत्की उत्पत्ति हुई किन्तु एकाकारसे दूसरे आकाररूप होगया है और आकार बदलनेमें स्वयं वस्तुके उत्पत्ति विनाश मानना न्यायसङ्गत नहीं है इसकारण जो अवस्था पहले थी वह अवस्था अब नहीं है इसहीका नाम व्यय है जो अवस्था पहले नहीं थी वह अब है इसहीका नाम उत्पाद है जो भाव पहले था वही भाव अब है इसहीका नाम ध्रौव्य है एसा नहीं है कि, उत्पादका समय भिन्न है व्ययका समय भिन्न है और ध्रौव्यका समय भिन्न है क्योंकि, उत्पाद और व्ययका भिन्नसमय माननेसे द्रव्यके लोपका प्रसङ्ग आता है सोई दिखाते हैं कि, उत्पाद और व्ययका भिन्न समय माननेसे पदार्थकी स्थिति इसप्रकार होयगी कि, प्रथमसमय पिण्डपर्यायका है द्वितीय समय पिण्डपर्यायव्ययका तृतीय समय घटपर्यायके उत्पादका है अब यहां यह प्रश्न उठता है कि, द्वितीयसमयमें उस मृत्तिका द्रव्यका कौनसा पर्याय है यदि कहोगे कि, पिण्डपर्याय है सो होनहीं सकता क्योंकि, एकही समयमें पिण्डपर्यायका सद्भाव और अभाव (व्यय) का प्रसंग आया सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है यदि कहोगे कि, उस द्वितीयसमयमें मृत्तिकाद्रव्यके घटपर्याय है सोभी युक्त नहीं होसकता क्योंकि अभी घटपर्यायका उत्पादही नहीं हुआ है यदि कहोगे कि, उस द्वितीयसमयमें कोईभी पर्याय नहीं है तो पर्यायके अभावका प्रसङ्ग आया किन्तुपर्याय और पर्यायीमें तादात्म्यसंबंध है इसकारण पर्यायके अभावमें पर्यायी (द्रव्य) केभी अभावका प्रसङ्ग आया इसकारण उत्पाद और व्ययका एकही समय मानना समुचित है और जब उत्पाद और व्ययका एकही समय है तो उसही समयमें ध्रौव्यभी अवश्य है क्योंकि, जिसप्रकार पिण्डपर्यायके समयमें मृत्तिकात्व था

उसही प्रकार घटपर्यायके समयमेंभी मृत्तिकात्व है इसहीकानाम ध्रौव्य है अब इसही-भावको एक दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते हैं एक सेठके यहां तीन मनुष्य आये उनमेंसे एकका नाम धनदत्त दूसरेका नाम जिनदत्त और तीसरेका नाम इन्द्रदत्त था धनदत्तके लडकेका विवाह था इसकारण वह विवाहकेवास्ते एक सोनेका घट लेनेको आया था जिनदत्त सराफ था वह सेठके यहां सोना सामान्य लेनेकी इच्छासे आया था इन्द्रदत्त न्यारिया था वह सेठके यहां टूटाफूटा सोना मंदेभावसे लेनेकी इच्छासे आया था सेठकेपास एक छोटासा सोनेका घडा रक्खा हुआ था अकस्मात् ऊपरकी छत्तके रोशन दानमेंसे एक लोहेका गोला उस सुवर्णघटके ऊपर इस जोरसे गिराकि उस घड़ेके टुकडे २ हो गये जिससमय मैं वह घड़ा फूटा है उससमयमें धनदत्तके विषादरूप परिणाम हुए क्योंकि, वह विवाहनिमित्त सुवर्णघट लेनेकी इच्छासे आया था सो घड़ेके फूटजानेसे उसकी इच्छाका व्याघात हुआ इंद्रदत्तके उसही समयमें हर्षरूपपरिणाम हुए क्योंकि वह टूटाफूटा सोना मंदेभावसे लेनेकी इच्छासे आया था सो अब इस घड़ेके फूटनेसे उसको अपनी इच्छा पूर्णहोनेकी आशा बंधी जिनदत्तके उसहीसमय मध्यस्थ परिणाम रहे क्योंकि, वह सुवर्ण सामान्यका ग्राहक था सोवही सुवर्ण पहलेभी था और अबभी है इसप्रकार घट फूटनेके समय मैं तीन पुरुषोंके भिन्न २ तीन जातिके परिणाम हुए इसलिये कार्यभेदसे कारण भेदका अनुमान होता है भावार्थ एकही समय मैं घटपर्यायका व्यय कपालपर्यायकी उत्पत्ति और सुवर्णभावका ध्रौव्य है यहां शंका-कार फिर कहता है कि, जो द्रव्य उत्पादैक लक्षण है तो अपनेही समयमें उत्पाद होयगा और व्ययैक लक्षण है इसकारण व्यय अपने समयमें और ध्रौव्यैक लक्षण है इसकारण ध्रौव्य अपने समयमें होगा इस प्रकार तीनोंके भिन्नसमय होने चाहिये जैसे बीजांकुरवृक्षके भिन्नसमय हैं सो एसा कहना उचित नहीं है क्योंकि, हेतु और दृष्टान्तसे क्षणभेद सिद्ध नहीं होता किन्तु एक समयही सिद्ध होता है उसका खुलासा इसप्रकार है जो समय बीजपर्यायका है उससमयमें बीजका सद्भाव है उससमयमें बी-जका व्यय नहीं कहा जासकता क्योंकि, एकही समयमें बीजका सद्भाव और उसही समयमें उसका व्यय (अभाव) यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है यदि कहोगे कि, बीजपर्याय और अंकुरपर्याय इन दोनों समयोंके बीचमें एक भिन्नसमयमें बीजका व्यय होता है तो उसमें पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्यके अभावका प्रसंग आता है इसकारण पारिशेष्यसे जो स-मय अंकुरका है उसहीसमय मैं बीजका व्यय है अब बीजपर्यायके समयमें अंकुरका उत्पाद यदि माना जाय सोभी ठीक नहीं है क्योंकि, एकही समयमें एक द्रव्यके दो-पर्यायका प्रसंग आवेगा सोभी विरुद्ध है इसकारण अंकुरका उत्पादभी अंकुरके समय-

मेंही है अन्यसमयमें नहीं है तथा बीज और अंकुर इन दोनोंको सामान्य अपेक्षासे वृक्ष कहा जाय तो वह वृक्षत्व न तो नष्ट हुआ है और न उत्पन्न हुआ है किन्तु बीजावस्थासे नष्ट हुआ है और अंकुरावस्थासे उत्पन्न हुआ है तो न्यायकेवलसे यही सिद्ध होता है कि, उत्पाद व्यय और ध्रौव्य तीनो एकही समयमें होते हैं अर्थात् वही वृक्ष बीजस्वरूपसे नष्ट हुआ है और अंकुरस्वरूपसे उत्पन्न हुआ है जो समय अंकुरकी उत्पत्तिका है वही समय बीजके नाशका है और वृक्षत्व दोनोंका जीवभूत है इसकारण वृक्षत्वकाभी वही काल है इसप्रकार यह निर्दोष सिद्ध हुआ कि, एक सत् (द्रव्य) के उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनो पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे (सर्वथा नहीं) एकही समयमें होते हैं यदि पर्याय निरपेक्ष केवल सत्के उत्पाद व्यय ध्रौव्य होते तोही विरोध आता तथा क्षणभेद होता अथवा जिस पर्यायका उत्पाद है उसही पर्यायके यदि व्यय और ध्रौव्य होते तोभी विरोध आता परन्तु यहां प्रकरण तो एसा है कि, किसीएक पर्यायकरके व्यय है, किसी दूसरी पर्यायकरके उत्पाद है और किसी तीसरी पर्यायकरके ध्रौव्य है जैसे वृक्षमें बीजपर्यायकरके व्यय है अंकुरपर्यायकरके उत्पाद है और वृक्षत्वकरके ध्रौव्य है एसा नहीं है कि, बीजपर्यायकरकेही व्यय है बीजपर्यायकरकेही उत्पाद है और बीजपर्यायकरकेही ध्रौव्य है एसा होनेसे प्रत्यक्ष विरोध आता उत्पाद और व्यय इन दोनोंका आत्मा (जीवभूत) स्वयंसत् है इसकारण ये दोनों सद्वस्तुही हैं सत भिन्न नहीं हैं पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य हैं किन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे न उत्पाद है न व्यय है और न ध्रौव्य है अब यहां फिर कोई शंका करता है कि, वस्तुको यातो सद्रूपउत्पादस्वरूपही मानो अथवा असद्रूपव्ययस्वरूपही मानो अथवा ध्रौव्यस्वरूपही मानो तीनों स्वरूप कैसे मानते सो एसा कहना उचित नहीं है क्योंकि, उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंका परस्पर अविनाभाव है जहां एक नहीं है वहां शेषके दो नहीं है और जहां दोनहीं हैं वहां शेषका एकभी नहीं है अर्थात् व्यय उत्पादकेविना नहीं होता यदि उत्पादनिरपेक्ष व्यय मानोगे तो वस्तुका निरन्वय नाश होजायगा और इसप्रकार सत्के विनाशका प्रसंग आवेगा तथा उत्पादभी व्ययके विना संभव नहीं होसकता क्योंकि, जो व्ययनिरपेक्ष केवल उत्पादको मानोगे तो असत्के उत्पादका प्रसंग आवेगा और विनाकारणके असत्का उत्पाद असंभव है इसही प्रकार ध्रौव्यभी उत्पाद और व्ययके विना नहीं होसकता क्योंकि, उत्पादव्ययनिरपेक्ष केवल ध्रौव्यको माननेसे द्रव्य अपरिणामी ठहरेगा सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि, प्रत्यक्षसे द्रव्य परिणामी प्रतीत होता है अथवा उत्पादव्यय विशेष हैं और ध्रौव्य सामान्य है वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है इस

कारण उत्पादव्ययरूप विशेषके अभावमें ध्रौव्यरूप सामान्यकेभी अभावका प्रसंग आवैगा तथा ध्रौव्यनिरपेक्ष उत्पादव्ययभी नहीं होसक्ते क्योंकि, सर्वक्षणिककी तरह सत्‌के अभावमें न व्यय होसक्ता है और न उत्पाद होसक्ता है इसप्रकार उत्पादव्ययध्रौव्यका संक्षेप कथन समाप्त हुआ

अब यहां फिर कोई शंका करता है कि, पहले वस्तुका स्वरूप निर्विकल्प कहा था सो उस निर्विकल्प एक पदार्थमें इतने विस्तारका क्या कारण है उसका समाधान पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है, जिसप्रकार आकाशमें विष्कंभ (चौड़ाई) के क्रमसे अंगुल, वितस्ति (बिलस्त), हस्तादिक अंशविभाग होता है उसही प्रकार अखण्ड देशरूप बड़े द्रव्यमें अंशविभाग होता है वे अंश प्रथमअंश द्वितीयअंश इत्यादि क्रमसे अविभागी असंख्यात तथा अनन्त अंश हैं इन अंशोंमेंसे प्रत्येक अंशको द्रव्यपर्याय कहते हैं सो ठीकही है क्योंकि, द्रव्यमें अंशकल्पनाकोही पर्याय कहते हैं। (शंका) इस अंशकल्पना करनेका प्रयोजन क्या है? और जो यह अंशकल्पना नहीं कीजाय तो क्या हानि है. (समाधान) गुणोंका समुदायरूप जो पिण्ड है उसको देश कहते हैं, उसदेशके न माननेसे द्रव्यका अस्तित्वही नहीं ठहरता, इसकारण देशका मानना आवश्यक है, उस देशमें जो अंशकल्पना नहीं मानोगे तो द्रव्यमें छोटापन, बड़ापन, कायपन (अनेक प्रदेशीपन), और अकायपन (एक प्रदेशीपन) की सिद्धि नहीं होसक्ती। (शंका) जो एसा है तो एक द्रव्यमें अनेक अंशकल्पना न करके प्रत्येक अंशकोही परमाणुकी तरह द्रव्य क्यों नहीं मानलेते क्योंकि, उस अंशमेंभी द्रव्यका लक्षण मौजूद है. (समाधान) सो ठीक नहीं है क्योंकि, खंडस्वरूप एक देशवस्तुमें और अखंडस्वरूप अनेक देशवस्तुमें प्रत्यक्षमें पारिणामिक बड़ाभारी भेद है क्योंकि, जो वस्तु खण्डरूप एक देश माना जायगा तो उसवस्तुमें गुणका परिणमन एकही देशमें होगा, परन्तु यह बात प्रत्यक्ष बाधित है बेंतके एक भागको हिलानेसे सब बेंत हिलता है अथवा शरीरके एक देशमें स्पर्श होनेसे उसका बोध सर्वत्र होता है इसलिये खण्डैकदेशरूपवस्तु नहीं है किन्तु अखण्डितानेकदेशरूप है तथापि पुद्गलपरमाणु और कालाणु ये खण्डैकदेशरूपवस्तुभी हैं, येही प्रदेश, विशेष (गुण) करिसहित द्रव्य संज्ञक हैं और उन विशेषोंको गुण कहते हैं देश उनगुणोंका आत्मा (जीवभूत) है, उनगुणोंकी सत्ता देशसे भिन्न नहीं है और न देश और विशेषमें आधेयआधार सम्बन्ध है किन्तु उन विशेषोंसेही देश वैसा है जैसे तन्तु शुक्लादिक गुणोंका शरीर है तन्तुमें और शुक्लादि गुणोंमें आधार आधेयसम्बन्ध नहीं है किन्तु शुक्लादिक गुणोंसेही तन्तु वैसा (तन्तु) है। (शंका) जिसप्रकार पुरुष भिन्न है और दण्डभिन्न है दण्ड और पुरुषके योगसे पुरुषको दण्डी कहते हैं उसही प्रकार देश-

भिन्न है गुणभिन्न है उस देशको गुणके संयोगसे द्रव्य कहैं तो क्या हानि है. (समाधान) सो ठीक नहीं हैं क्योंकि, एसा माननेसे सर्वसंकर दोष आता है चेतनागुणका अचेतन पदार्थोंसे संयोगका प्रसंग आवैगा. (इसका विशेष कथन पहले कर आये हैं वहांसे जानना) इसप्रकार इन निर्विशेप देशविशेपोंको गुण कहते हैं गुण, शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म, रूप, स्वभाव, प्रकृति, शील, और आकृति ये सब शब्द एक अर्थके कहनेवाले हैं देशकी जो एकशक्ति है सोही अन्यशक्ति नहीं हैं किन्तु एकशक्तिकी तरह एक देशकी अनन्तशक्तियां हैं जैसे एक आमके फलमें एकसमयमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण ये चार गुण दीखते हैं ये चारोंही गुण एक नहीं है किन्तु भिन्न २ हैं क्योंकि, जुदी २ इन्द्रियोंके विषय हैं उसही प्रकार एक जीवमें दर्शन, ज्ञान, सुख, और चारित्र ये चारों गुण एक नहीं हैं किन्तु भिन्न २ हैं, इसही-प्रकार प्रत्येक पदार्थमें अनन्तशक्तियां हैं इन अनन्तगुणोंमेंसे प्रत्येकगुणमें अनन्त अनन्त गुणांश हैं इसही गुणांशको अविभागपरिच्छेद कहते हैं इसका खुलासा इसप्रकार है कि, द्रव्यमें एकगुणकी एक समयमें जो अवस्था होती है उसको एक गुणांश कहते हैं इसहीका नाम गुणपर्याय है जिसप्रकार देशमें विष्कम्भक्रमसे अंशकल्पना है उसप्रकार गुणमें गुणांशकल्पना नहीं है, देशका देशांश केवल एक प्रदेश व्यापी है किन्तु गुणका एक गुणांश एक समयमें उस द्रव्यके समस्त देशको व्यापकर रहता है इसलिये गुणमें अंशकल्पना कालक्रमसे है प्रत्येक समयमें जो अवस्था किसीगुणकी है उसही अवस्थाको गुणांश अथवा गुणपर्याय कहते हैं त्रिकालवर्ती इन सब गुणांशोंको एक आलाप करके गुण कहते हैं एक गुणकी सदाकाल एकसी अवस्था नहीं रहती है उसमें प्रायः हीनाधिकता होती रहती है, यद्यपि एक गुणमें प्रायः प्रतिसमय हीनाधिकता होती रहती है तथापि उसकी मर्यादा है किसीगुणकी सबसे हीनअवस्थाको जघन्य अवस्था कहते हैं और सबसे अधिक अवस्थाको उत्कृष्ट अवस्था कहते हैं एसा नहीं है कि, हानि होते होते कभी उसका अभाव हो जायगा अथवा वृद्धि होते २ हमेशा बढताही चला जायगा, जब कि एकगुणकी अनेक अवस्था हैं और वे सब समान नहीं हैं किन्तु हीनाधिकरूप हैं तो एक अधिक अवस्थामेंसे हीनावस्था घटानेसे उन दोनों अवस्थाओंका अन्तर निकलसक्ता है और इसप्रकार एकगुणकी अनेक अवस्थाओंमेंसे दो २ अवस्थाओंके अनेक अन्तर निकलेंगे और वे सब अन्तरभी परस्पर समान नहीं हैं किन्तु हीनाधिक हैं, इन अनेक अन्तरोंमें जो अन्तर सबसे हीन है उसको जघन्य अन्तर कहते हैं, किसीगुणकी जघन्य अवस्था और उसका जघन्य अन्तर समान होते हैं उसगुणकी जघन्य अवस्था तथा जघन्य अन्तर इन दोनोंको

अविभागपरिच्छेद कहते हैं, परन्तु किसीगुणमें उस गुणका जघन्य अन्तर उसगुणकी जघन्य अवस्थाके अनन्तवें भाग होता है उसगुणमें उस जघन्य अन्तरकोही अविभागपरिच्छेद कहते हैं, एसी अवस्थामें उसगुणकी जघन्य अवस्थामें अनन्त अविभाग परिच्छेद कहे जाते हैं जैसे कि, सूक्ष्म निगोदियालब्ध्यपर्याप्तकजीवके जघन्यज्ञानमें अनन्तानन्त अविभागपरिच्छेद हैं, इन अविभागपरिच्छेदोंसेही गुणकी हीनाधिकताका परिमाण किया जाता है इन अविभागपरिच्छेदोंका आत्मा (जीवभूत) गुण है और गुणसे भिन्न इनकी सत्ता नहीं है, यहां इतना औरभी विशेष जाननाकि एक समयमें एक गुणकी जो अवस्था है उसको गुणांश अर्थात् गुणपर्याय कहते हैं परन्तु इस एक गुणपर्यायमेंभी अनन्तगुणांश हैं, सो इन गुणांशोंको अविभागपरिच्छेद कहते हैं तथा गुणपर्यायभी कहते हैं

अंश, पर्याय, भाग, हार, विध, प्रकार, भेद, छेद, और भंग ये सब शब्द एकार्थवाचक हैं इसलिये गुणांशोंको गुणपर्याय कहना उचितही है कोई आचार्य गुणपर्यायको अर्थपर्यायभी कहते हैं सो यहांपर अर्थशब्दको गुणवाचक समझना और जो पहले देशांशोंको द्रव्यपर्याय कह आए हैं उनको कोई आचार्य व्यंजनपर्यायभी कहते हैं अब यहां कोई शंका करता हैं कि, यह अंशअंशी कल्पना पिष्टपेषणवत् व्यर्थ है उसका समाधान इसप्रकार है कि, यह कल्पना व्यर्थ नहीं है किन्तु फलवती है क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु अवस्थित है किन्तुपर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे अनवस्थित है, जैसे परिणामी आत्मा यद्यपि ज्ञानगुणकी अपेक्षासे अवस्थित है तथापि उस ज्ञानगुणके हीनाधिकरूप अंशोंसे अनवस्थित है अथवा जैसे परिणामी श्वेतवस्त्र यद्यपि श्वेतताकी अपेक्षासे अवस्थित है तथापि उस श्वेतताके हीनाधिकअंशोंकी अपेक्षासे अनवस्थित है, इसप्रकार द्रव्यके दूसरे सत्लक्षणका कथन समाप्त हुआ अब आगे द्रव्यके गुणपर्ययवत् इस तीसरे लक्षणका कथन करते हैं

द्रव्यके जो तीन लक्षण कहे सो इन तीनोंका एकही अभिप्राय है किन्तु वाक्यशैली भिन्न२ है "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" इस तीसरे लक्षणका यह अभिप्राय है कि, गुण और पर्यायके समुदायको द्रव्य कहते हैं अथवा कोई२ आचार्योंने गुणके समुदायकोही द्रव्य कहा है, इस सबका तात्पर्य यह है कि, देश, देशांश, गुण, और गुणांश इन चारोंको एक आलापसे द्रव्य कहते हैं परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि, देश, देशांश, गुण, और गुणांश ये चार पदार्थ भिन्न२ हैं इन चारोंके मिलनेसे समूहको द्रव्य कहते हैं, किन्तु अनन्तशक्तियोंके अभिन्नभावको देश कहते हैं, देशांश और गुणांश इनही देश और गुणोंकी अवस्था विशेष हैं अनन्तशक्तियोंमेंसे प्रत्येकशक्ति

देशके समस्त भागमें व्यापक हैं इसलिये इसका खुलासा भावार्थ यह है कि, अभिन्नभावकोलिये अनन्तशक्तियोंकी त्रिकालवर्ती अवस्थाओंके समूहको द्रव्य कहते हैं इससे "गुणसमुदायो द्रव्यं" एसा जो पूर्वाचार्योंने लक्षण किया है वह सिद्ध होता है इसप्रकार गुण और गुणीमें अभिन्नभाव है इसका निर्देश "द्रव्येगुणाःसन्ति" अर्थात् द्रव्यमें गुण हैं इसप्रकार आधेयआधार सम्बन्धरूपभी होता है तथा "गुणवद्द्रव्यं" अर्थात् द्रव्यगुणवाला है इसप्रकार स्वस्वामिसम्बन्धरूपभी होता है लौकिकमें आधेयआधार और स्वस्वामिसम्बन्ध भिन्न पदार्थोंमेंभी होते हैं और अभिन्न पदार्थोंमेंभी होते हैं जैसे दीवारमें चित्र तथा घड़ेमें दही यहां भिन्नपदार्थोंका आधेयआधारसम्बन्ध है तथा धनवान् पुरुष यहां भिन्नपदार्थोंमें स्वस्वामिसम्बन्ध है, इसही प्रकार वृक्षमें शाखा आदि हैं यहां अभिन्नपदार्थोंमें आधेयआधारसम्बन्ध है तथा वृक्षशाखावान् है यहां अभिन्नपदार्थोंमें स्वस्वामिसम्बन्ध है, सो द्रव्य और गुणके विषयमें अभिन्न आधेयआधार तथा अभिन्नही स्वस्वामिसम्बन्ध समझना। (शंका) जब गुणोंका समुदाय है सोही द्रव्य है गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है तो यह द्रव्यकी जो कल्पना है सो व्यर्थही है (समाधान) एसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि, यद्यपि पट तन्तुओंकाही समूह है तन्तुओंसे भिन्न पट कोई पदार्थ नहीं है परन्तु जो शीतनिवारणादि अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूतकार्य) पटसे होसक्ती है सो तन्तुओंसे कदापि नहीं होसक्ती इसलिये समुदायसमुदायी कथंचित् भिन्न हैं कथंचित् अभिन्न हैं

अब "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" और "सद्द्रव्यलक्षणं" इन दोनो लक्षणोंमें एकता दिखाते हैं, सत् एक गुण है उससत्के उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य ये तीन अंश हैं, जिसप्रकार वस्तु स्वतः सिद्ध है उसहीप्रकार स्वतः परिणामीभी है. भेदविकल्पनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जो सत् है सोही द्रव्य है इसकारण द्रव्यही उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है और उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप द्रव्य, परिणामकेविना होनहीं सक्ता यदि विनापरिणामकेभी उत्पादव्यय मानोगे तो असत्के उत्पाद और सत्के विनाशका प्रसंग आवैगा इसकारण द्रव्य किसी भावसे उत्पन्न होता है किसी भावसे विनाशको प्राप्त होता है ये उत्पादव्यय वस्तुपनेसे नहीं होते, जैसे मृत्तिका घटस्वरूपसे उत्पन्न होती है पिण्डस्वरूपसे विनाशको प्राप्त होती है मृत्तिकास्वरूपसे उत्पादव्यय नहीं हैं. यदि द्रव्यमें उत्पादव्ययरूप परिणाम नहीं मानोगे तो परलोक तथा कार्यकारणभावके अभावका प्रसंग आवैगा और यदि परिणामीको नहीं मानोगे तो वस्तु परिणाममात्र क्षणिक ठहरेगी तो प्रत्यभिज्ञान (यह वही है जो पहले था) के अभावका प्रसंग आवैगा, इससे सिद्ध हुआ कि, द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक है, नित्यताकी और गुणकी परस्पर

व्याप्ति है इसलिये "द्रव्यगुणवान् है" एसा कहनेसे "द्रव्य ध्रौव्यवान् है" एसा सिद्ध होता है इसहीप्रकार अनित्यतायुक्तपर्यायोंकी उत्पादव्ययके साथ व्याप्ति है इसलिये "द्रव्यपर्यायवान् है" एसा कहनेसे "द्रव्य उत्पादव्यययुक्त है" एसा सिद्ध होता है. उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य इन तीनोंको एक आलापसे सत् कहते हैं इसलिये "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" कहनेसे "सद्द्रव्यलक्षणं" एसा सिद्ध हुआ (शंका) यदि एसा है तो तीन लक्षण कहनेका क्या प्रयोजन तीनोंमेंसे कोई एक लक्षण कहना बस था। (समाधान) यद्यपि इन तीनों लक्षणोंमें परस्पर विरोध नहीं है और परस्पर एक दूसरेके अभिव्यंजक है तथापि ये तीनों लक्षण द्रव्यकी भिन्न तीन शक्तियोंकी अपेक्षासे कहे हैं अर्थात् पहले द्रव्यके छह सामान्यगुण कह आए हैं उनमें एक द्रव्यत्व, दूसरा सत्व, और तीसरा अगुरुलघुत्व है (इन तीनोंके लक्षण भूमिकासे जानने) सो पहला लक्षण द्रव्यत्वगुणकी मुख्यतासे, दूसरा लक्षण सत्वगुणकी मुख्यतासे, और तीसरा लक्षण अगुरुलघुत्वगुणकी मुख्यतासे कहा है अब आगे गुणका स्वरूप वर्णन करते हैं

गुणका लक्षण पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है कि, द्रव्यके आश्रय विशेषमात्र निर्विशेषको गुण कहते हैं भावार्थ एक गुण जितने क्षेत्रको व्यापकर रहता है उतनेही क्षेत्रमें समस्तगुण रहते हैं अर्थात् अनन्तगुण एकही देशमें भिन्न २ लक्षणयुक्त अभिन्न भावसे रहते हैं इनगुणोंके अभिन्नभावकोही द्रव्य कहते हैं वही द्रव्य इन गुणोंका आश्रय है जैसे अनेक तन्तुओंके समूहकोही पट कहते है इस पटकेही आश्रय अनेक तंतु हैं परंतु प्रत्येक तंतुका जैसे देश भिन्न २ है उसप्रकार प्रत्येक गुणका देश भिन्न २ नहीं हैं किन्तु सबका देश एकही है जैसे किसी वैद्यने एक एक तोले प्रमाण एक लक्ष औषधि लेकर एक चूर्ण बनाया और उसकी कूट छान नींबूके रसमें घोंटकर एक एक रत्तीप्रमाण गोलियां बनाई अब उस एक गोलीमें एक लक्ष औषधियां हैं और उन सबका देश एकही है इसही प्रकार समस्त गुणोंका एक देश जानना परंतु दृष्टान्तका दार्ष्टान्तसे एक देशही मिलता है जिसधर्मकी अपेक्षासे दृष्टान्त दिया है उसही अपेक्षासे समानता समझना अन्यधर्मोंकी अपेक्षा समानता नहीं समझना. गुणके नित्यानित्य विचार में अनेक वादी प्रतिवादी नाना कल्पनाद्वारा परस्पर विवाद करते हैं परन्तु जैनसिद्धान्तके अनुसार द्रव्यकी तरह गुणभी कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य हैं जैसे पहले समयमें परिणामी ज्ञान घटाकार था और पिछले समयमें वही ज्ञान पटाकार हुआ परंतु ज्ञानपनेका नाश नहीं हुआ घटाकार परिणतिमेंभी ज्ञान था और पटाकार परिणतिमेंभी ज्ञान है इसलिये ज्ञानगुण कथंचित् ज्ञानपनेकर नित्य है अथवा जैसे आमके फलमें वर्णगुण पहले हरा था पीछे पीला हुआ परन्तु वर्णपनेका नाश

नहीं हुआ है इसलिये वर्णगुणकथंचित् वर्णपनेकी अपेक्षासे नित्य है जिसप्रकार वस्तु परिणामी है उसही प्रकार गुणभी परिणामी हैं इसलिये जैसे वस्तुमें उत्पादव्यय हैं उसही प्रकार गुणमेंभी उत्पादव्यय होते हैं. जैसे ज्ञान यद्यपि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षासे नित्य है किंतु प्रथमसमयमें घटको जानते हुए घटाकार था और दूसरे समय पटको जानते हुए पटाकार होता है इसलिये ज्ञानमें पटाकारकी अपेक्षा उत्पाद हुआ और घटाकारकी अपेक्षा व्यय हुआ अथवा जैसे आमके फलमें वर्णकी अपेक्षा यद्यपि नित्य ता है परंतु हरितता और पीतताकी अपेक्षा उत्पाद और व्यय होते हैं अब यहां शंकाकार कहता है कि, गुणतो नित्य हैं और पर्याय अनित्य हैं फिर द्रव्यकी तरह गुणोंको नित्यानित्यात्मक कैसे कहा (समाधान) इसका अभिप्राय एसा है कि, जब गुणोंसे भिन्न द्रव्य अथवा पर्याय कोई पदार्थ नहीं हैं किंतु गुणोंके समूहकोही द्रव्य कहते हैं तो जैसे द्रव्य नित्यानित्यात्मक है उसही प्रकार गुणभी नित्यानित्यात्मक स्वयंसिद्ध हैं. वे गुण यद्यपि नित्य हैं तथापि विनायत्नके प्रतिसमय परिणमते हैं और वह परिणाम उनगुणोंकीही अवस्था है उनपरिणामों (पर्यायें) की गुणोंसे भिन्नसत्ता नहीं है (शंका) पूर्व और उत्तर समयमें गुण जैसेका तैसा है और परिणाम पहले समयमें एकरूप है और दूसरे समयमें दूसरे रूप है इससे सिद्ध होता है कि, उन दोनों अवस्थाओंमें रहनेवाला गुण उन परिणामोंसे भिन्न है (समाधान) सो नहीं है किन्तु एसा है कि, गुण पूर्वसमयमें जिसपरिणाम रूप है वह परिणाम उस गुणसे भिन्न कोई चीज नहीं है किन्तु उसगुणकी ही अवस्था विशेष है वही गुण दूसरे समयमें दूसरे परिणामरूप है वह दूसरा परिणामभी उस गुणसे कोई भिन्न पदार्थ नहीं है किंतु उसही गुणकी एक अवस्था विशेष है जो गुण परिणामीपनेसे उत्पादव्ययस्वरूप हैं वेही गुण टंकोत्कीर्णन्यायसे अपने स्वरूपसे नित्य हैं तथा एसाभी नहीं है कि, एक गुणका नाश होजाता है और दूसरे गुणका उत्पाद होता है और द्रव्य उनका आधारभूत है किन्तु एकही गुण प्रतिसमय अनेक अवस्थारूप होता है (शंका) केवल देश है सो तो द्रव्य है और उस देशके आश्रय जो विशेष हैं वे गुण हैं इसलिये द्रव्य और गुण भिन्न २ हैं और इसहीकारण द्रव्यमें उत्पादव्ययध्रौव्य अच्छी तरह घटित होते हैं अर्थात् द्रव्यरूपदेश नित्य है उसकी अपेक्षासेही ध्रौव्य है और गुणरूपविशेष अनित्य हैं उनकी अपेक्षासेही उत्पाद और व्यय हैं (समाधान) सो ठीक नहीं है क्योंकि, इसलक्षणसे गुण क्षणिक ठहरते हैं और क्षणिक पदार्थमें अभिज्ञान (यह वही है जो पहले था) नहीं होसक्ता और गुणोंमें अभिज्ञान प्रत्यक्ष सिद्ध है इसलिये पूर्वोक्त लक्षण बाधित है. सिवाय इसके पूर्वोक्त लक्षणसे एक समयमें

एक द्रव्यमें अनेक गुण नहीं होसक्ते सोभी प्रत्यक्ष बाधित है क्योंकि, एक आमके फलमें स्पर्शरसगन्धादि अनेक गुण प्रत्यक्ष सिद्ध हैं (शंका) अच्छा तो हम गुणको नित्य और परिणामी मानेंगे (समाधान) तो बस इसका वही अर्थ होता है जो हम पहले कह आये है अर्थात् गुण उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है. और जो कि, तुमने पहले कहा कि, केवल प्रदेश हैं सो द्रव्य है सोभी ठीक नहीं है किन्तु प्रदेशवत्व नामक एक शक्ति विशेष है सो वह शक्तिभी कोई गुण है इसलिये पूर्वाचार्योंने "गुणोंका समुदाय है सोही द्रव्य है" एसा जो लक्षण किया है उसका यही अभिप्राय है कि, यदि देशको अनेक विभागोंमें बांटा जाय तो गुणोंकेसिवाय और कुछभी नहीं रहता. (शंका) यदि एसा है तो जितनी पर्याय हैं उन सबको गुणपर्यायही कहना चाहिये द्रव्यपर्याय कोईभी नहीं ठहरेगी (समाधान) सो नहीं हैं इसमें कुछ विशेष है जिसका खुलासा इसप्रकार है कि, यद्यपि समस्त गुण गुणत्वसामान्यकरि सहित हैं तथापि जिसप्रकार उनगुणोंके चेतन और अचेतन ये दो भेद हैं उसहीप्रकार उन अनंतशक्तियों (गुणों) में दूसरे दो भेद हैं अर्थात् १ क्रियावतीशक्ति २ भाववतीशक्ति, प्रदेश अथवा देशपरिस्पंद (चंचलता) को क्रिया कहते हैं और शक्तिविशेषको भाव कहते हैं भावार्थ अनंत गुणोंमेंसे प्रदेशवत्व गुणको क्रियावती शक्ति कहते हैं और बाकीके गुणोंको भाववती शक्ति कहते हैं इस प्रदेशवत्वगुणके निमित्तसेही द्रव्यके अनेक आकार होते हैं और इसही प्रदेशवत्वगुणके परिणमन (पर्याय) को द्रव्यपर्याय कहते हैं इसहीका दूसरा नाम व्यंजनपर्याय है शेषगुणोंके परिणमन (पर्याय) को गुणपर्याय कहते हैं इसहीका दूसरा नाम अर्थपर्याय है, पर्यायका लक्षण पहले अंशकल्पना कह आये हैं सो द्रव्यपर्यायमें देशकी विष्कम्भक्रमसे अंशकल्पना है और गुणपर्यायमें गुणकी तरतमरूपसे अंशकल्पना है इसका खुलासा इसप्रकार है कि, संपूर्ण गुणोंका जो अभिन्नभावसे एक पिंड है उसको द्रव्य कहते हैं उसद्रव्यको अनेक विभागोंमें विभाजित करनेको अंशकल्पना कहते हैं इसहीका नाम पर्याय है प्रदेशवत्वगुणके निमित्तसे द्रव्यके आकारमें विकार होता है इस आकारमें दोप्रकारकी अंशकल्पना हैं एक तिर्यगंश कल्पना दूसरी ऊर्द्धांश कल्पना एक समयवर्ती आकारको अविभागी अनेक अंशोंमें विभाजित करनेको तिर्यगंश कल्पना कहते हैं इन प्रत्येक अविभागी अंशोंको द्रव्यपर्याय कहते हैं । द्रव्यका एक समयमें एक आकार है द्वितीयसमययें द्वितीय आकार है तृतीयसमयमें तृतीय आकार है इसहीप्रकार अनन्त समयोंमें अनन्त आकार हैं इसप्रकार कालके क्रमसे द्रव्यके आकारके अनंत भेद हैं इसहीको ऊर्द्धांश कल्पना कहते हैं और इन अनन्तसमयवर्ती अनन्त आकारोंमेंसे

प्रत्येक समयवर्ती प्रत्येक आकारको व्यंजनपर्याय कहते हैं. भाववती शक्ति (प्रदेशवत्व गुणकेसिवाय अन्यगुण) कीभी इसहीप्रकार एक समयमें एक अवस्था है द्वितीयसमयमें द्वितीय अवस्था है तृतीयसमयमें तृतीय अवस्था है इसहीप्रकार कालक्रमसे एक गुणकी अनन्त समयोंमें अनन्त अवस्था हैं इसहीको गुणमें ऊर्द्धांशकल्पना कहते हैं इन अनन्त समयवर्ती अनन्त अवस्थाओंमेंसे प्रत्येक समयवर्ती प्रत्येक अवस्थाको अर्थपर्याय कहते हैं. एकगुणकी एकसमयमें जो अवस्था है उसअवस्थामें अविभागप्रतिच्छेदरूपअंशकल्पनाको गुणमें तिर्यगंश कल्पना कहते हैं और उन प्रत्येक अविभागप्रतिच्छेदोंको गुणपर्याय कहते हैं. इसप्रकार गुणोंमें उत्पादव्ययध्रौव्य भलेप्रकार सिद्ध होते हैं.

अब किसी आचार्यने गुणोंका लक्षण "सहभावी" तथा किसीने "अन्वयी" किया है उनका खुलासा इसप्रकार है कि. जो साथ रहनेवाले होंय उनको गुण कहते हैं परंतु साथका अर्थ एसा नहीं है कि, द्रव्यकेसाथ रहनेवाले गुण कहलाते हैं एसा अर्थ माननेसे द्रव्य गुणोंसे पृथक् ठहरेगा इसलिये इसका अर्थ एसा करना कि, अनेक गुण साथ रहते हैं कभीभी उनका परस्पर वियोग नहीं होता किंतु पर्याय क्रमभावी हैं इसलिये उनका सदा साथ नहीं रहता जे पर्याय पूर्वसमयमें हैं वे उत्तरसमयमें नहीं हैं किंतु गुण जितने पूर्वसमयमें साथ थे वे सवही उत्तरसमयमें हैं इसलिये गुणोंका साथ कभी नहीं छूटता यह वात पर्यायोंमें नहीं है इसलिये गुण सहभावी हैं पर्यायक्रम भावी हैं. जो अनर्गल प्रवाहरूपवर्ते उसको अन्वय कहते हैं. सत्ता, सत्व, सत्, सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ, और विधि ये सव शव्द एकार्थवाचक हैं वह अन्वय जिनका होय उनको अन्वयी अथवा गुण कहते हैं भावार्थ एक गुणका उसही गुणकी अनंत अवस्थाओंमें अन्वय (सन्तति अथवा अनुवृत्ति) पाया जाता है इसकारण गुणको अन्वयी कहते हैं यद्यपि एक द्रव्यमें अनेक गुण हैं इसलिये नानागुणकी अपेक्षा गुण व्यतिरेकीभी है परंतु एक गुण अपनी अनंत अवस्थाओंकी अपेक्षासे अन्वयीही है यह वही है इसज्ञानके हेतुको अन्वय कहते हैं और यह वह नहीं है इसज्ञानके हेतुको व्यतिरेक कहते हैं वह व्यतिरेक देश, क्षेत्र, काल, और भावके निमित्तसे चार प्रकार का है अनंतगुणोंके एक समयवर्ती अभिन्न पिंडको देश कहते हैं जो एक देश है सो दूसरा नहीं है तथा जो दूसरा देश है सो दूसराही है पहला नहीं है इसको देशव्यतिरेक कहते हैं जितने क्षेत्रको व्यापकर एक देश रहता है वह क्षेत्रवही है दूसरा नहीं है और दूसरा है सो दूसराही है वह नहीं है. इसको क्षेत्रव्यतिरेक कहते हैं एक समयमें

जो अवस्था होती है सो वह अवस्था वही है दूसरी नहीं है और द्वितीय समयवर्ती अवस्था दूसरीही है वह नहीं है इसको कालव्यतिरेक कहते हैं, जो एक गुणांश है वह वही है दूसरा नहीं है और जो दूसरा है सो दूसराही है वह नहीं है इसको भावव्यतिरेक कहते हैं, यह इसप्रकारका व्यतिरेकपर्यायोंमेंही होता है, गुणयद्यपि अनेक हैं तथापि इसप्रकारके व्यतिरेक गुणोंमें नहीं हैं किसीने जीवको "ज्ञान है सो जीव है" इसप्रकार ज्ञानगुणकी मुख्यतासे ग्रहण किया और दूसरेने "दर्शन है सो जीव है" इसप्रकार दर्शनगुणकी मुख्यतासे जीवको ग्रहण किया, किंतु दोनोंने उसही जीवको उतनाही ग्रहण किया इसलिये जैसे अनेक पर्याय "सो यह नहीं है" इसलक्षणके सद्भावसे व्यतिरेकी हैं उसप्रकार गुण अनेक होनेपरभी "सो यह नहीं हैं" इस लक्षणके अभावसे व्यतिरेकी नहीं है. उनगुणोंके दो भेद हैं सामान्य और विशेष जो गुण दूसरे द्रव्योंमें पाये जाते हैं उनको सामान्यगुण कहते हैं जैसे सत् इत्यादि और जो गुण दूसरे द्रव्योंमें नहीं पाये जाते उनको विशेषगुण कहते हैं जैसे ज्ञानादिक इसप्रकार गुणका कथन समाप्त हुआ अब आगे पर्यायका कथन करते हैं.

पर्याय व्यतिरेकी, क्रमवर्ती, अनित्य, उत्पादव्ययस्वरूप, तथा कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप होती है, सो व्यतिरेकीपनेका लक्षण तो गुणके कथनमें कर आये अब शेषमेंसे पहलेही क्रमवर्तित्वका लक्षण कहते हैं. पहले एक पर्याय हुई उस पर्यायका नाश होकर दूसरी हुई दूसरीका नाश होकर तीसरी हुई इसही प्रकार जो क्रमसे होय उसको क्रमवर्ती कहते हैं (शंका) तो फिर व्यतिरेक और क्रममें क्या भेद है (समाधान) जैसे स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी पर्याय हैं और स्थूलपर्यायमें सूक्ष्मपर्याय अंतर्लीन हैं (गर्भित हैं) इन दोनोंमें यद्यपि पर्यायपने कर समानता है तथापि स्थूलसूक्ष्म अपेक्षाभेद है भावार्थ द्रव्यका आकार प्रतिसमय परिणमनरूप होता है प्रथम समयवर्ती आकारकी अपेक्षासे द्वितीयादि समयवर्ती आकारोंमें कुछ अंश सदृश होता है कुछ अंश असदृश होता है वो असदृश सूक्ष्मभेद इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं होता और सदृशस्थूल परिणाम इन्द्रियद्वारा ग्रहण होता है वह अनेक समयोंमें एकसा है इसलिये स्थूलपर्याय चिरस्थायी कहा है और इसही अपेक्षासे पर्यायको कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप कहा है जिसप्रकार सूक्ष्मस्थूल पर्यायमें लक्षणभेदसे भेद है उसही प्रकार व्यतिरेक और क्रममेंभी लक्षणभेदसे भेद है स्थूलपर्यायमें अनेक समयोंमें सदृशांश (सदृश हैं अंश जिसके) सत् (द्रव्य) का जो प्रवाहरूपसे अंशविभाग पृथक् है उसको व्यतिरेक कहते हैं भावार्थ स्थूलपर्यायमें जो आकार प्रथम समयमें है उसहीके सदृश आकार दूसरे समयमें है इन दोनों आकारोंमें पहला है सो दूसरा नहीं है दूसरा है सो पहला

नहीं है इसकोही व्यतिरेकीपन कहते हैं और एकके पीछे दूसरा होना इसको क्रम कहते हैं यह वह है अथवा अन्य है इसकी यहां विवक्षा नहीं है "एकके पीछे दूसरा होना" इस लक्षरूपक्रम "यह वह नहीं है" इस लक्षणरूप व्यतिरेकका कारण है इसलिये क्रम और व्यतिरेकमें कार्यकारण भेद है (शंका) पहले कह आये हो कि, "जो पहले था सोही यह है अथवा जैसा पहले था वैसाही है" और अब क्रम और व्यतिरेकमें इससे विपरीत कहा इसमें क्या प्रमाण है (समाधान) इसका अभिप्राय एसा है कि, जिसप्रकार द्रव्य स्वतः सिद्ध नित्य है उसही प्रकार परिणामीभी है इसलिये प्रदीप शिखाकी तरह प्रतिसमय पुनः २ परिणमै है. (शंका) तो यह परिणाम पूर्वपूर्व भावके विनाशसे अथवा उत्तर २ भावके उत्पादसे होता है? (समाधान) सो नहीं है नतो किसीका उत्पाद होता और न किसीका नाश होता जो पदार्थ असत् है अर्थात् हैही नहीं वह आवैगा कहांसे और जो है वह जायगा कहां इस कारण यह निश्चित सिद्धान्त है कि, असत्का उत्पाद और सत्का विनाश कदापि नहीं होता. द्रव्यको जो नित्यानित्यात्मक कहा है उसका खुलासा इसप्रकार है कि, जब "सत्का विनाश कभी नहीं होता" एसा सिद्धान्त निश्चित है तो समस्त द्रव्य नित्य हैंही इससे नित्यपक्ष तो स्वयंसिद्ध है, अब द्रव्यको जो कथंचित् अनित्य कहा है उसका अभिप्राय यह है कि, द्रव्यमें अनित्यताका कथन दो प्रकारसे है एक तो व्यंजनपर्यायकी अपेक्षासे और दूसरा अर्थपर्यायकी अपेक्षासे, द्रव्यकी व्यक्तिके विकारको व्यंजनपर्याय कहते हैं जैसे एक जीव पहले मनुष्य व्यक्तिरूप था वही जीव पीछे हस्ती व्यक्तिरूप हो गया इसहीका नाम व्यंजनपर्याय है इस अवस्थामें एसा कहनेका व्यवहार है कि, मनुष्यका नाश हुआ और हाथी उत्पन्न हुआ परंतु जो परमार्थसे विचारा जाय तो नतो किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है, किंतु जैसे एक सौनेका फांसा है उसको एक सुनारने ठोककर किंचित् लंबा करके मोडकर उसका एक कड़ा बना दिया अब यहां जो परमार्थसे देखा जाय तो नतो किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है किंतु जो सोना पहले फांसेके आकार था वही अब कड़ेके आकार हो गया अर्थात् पहले उस सौनेने आकाशके जो प्रदेश रोके थे वे प्रदेश अब नहीं रोके हैं किन्तु दूसरेही प्रदेश रोके हैं भावार्थ सुवर्ण द्रव्यका देशसे देशान्तर मात्र हुआ है न किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है, केवल आकारका भेद हुआ है और आकारभेदमें देशसे देशांतरही है उत्पत्ति विनाश कुछभी नहीं है इसही प्रकार जीवभी मनुष्यके आकारसे हाथीका आकार हुआ है नतो मनुष्यका नाश हुआ है और न हाथीकी उत्पत्ति हुई है, केवल

मात्र इस आकारके भेदसेही इतना अवश्य होता है कि, जो पदार्थ जैसा पहले था वैसा अब नहीं रहा क्योंकि, उसमें आकारका भेद हो गया, किंचित् भेद होनेपरभी विसदृशता होतीही है बस यही व्यंजनपर्यायकी अपेक्षासे द्रव्यमें अनित्यताकथनका सारांश है (शंका) जो केवल आकारभेदही है तो एक पदार्थके अनेक आकारोंका क्षेत्रफल समानही होना चाहिये जैसे कि, एक सौनेका फांसा है उसके चाहे जितने आकार कर लो परंतु क्षेत्रफल समानही होगा सो जब एक जीव मनुष्याकारसे हाथीके आकार होता है तो उसमें क्षेत्रफलमें अन्तर क्यों है (समाधान) जैसे पांच मन रुईको एक कपड़ेमें बांधो और उसही पांच मन रुईको जब प्रेसमें दबाकर गांठ निकालो तो उसके क्षेत्रफलोंमें अन्तर आता है अथवा जैसे दीपकके प्रकाशका आकार छोटे मकानमें छोटा और बड़ेमें बड़ा होता है इसही प्रकार जीवका आकारभी छोटे शरीरमें छोटा और बड़े शरीरमें बड़ा होता है द्रव्य न्यूनाधिक नहीं होता किंतु संकोच विस्तारसे ऐसा होता है.

अर्थपर्यायकी अपेक्षासे जो द्रव्यमें अनित्यताका कथन है उसका अभिप्राय यह है कि, गुणके विकारको अर्थपर्याय कहते हैं वह गुणका विकार ऐसा है जैसे कि, ज्ञानगुण एक समयमें कुछ अविभागप्रतिच्छेद संयुक्त है वही ज्ञान द्वितीयादिक समयमें हीनाधिक अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप होता है. तथा ज्ञानगुण पूर्वसमयमें जितने अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप है उत्तर समयमेंभी उतनेही अविभागप्रतिच्छेद स्वरूप रहता है किन्तु पूर्वसमयमें वह ज्ञान घटको जानता था इसकारण घटाकार था उत्तर समयमें वही ज्ञान उतनेही अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप रहतेभी लोकको जानता है इसलिये लोकाकार हो जाता है जिससमय वह ज्ञान घटाकार था तो उससमय ज्ञानके शेषअंशोंका नाश नहीं हो गया था तथा जब लोकाकार हुआ तो असत् अंशोंकी उत्पत्ति नहीं हुई, इसलिये इस न्यूनाधिक आकारमें अंशोंकी न्यूनाधिकता नहीं होती है किन्तु जितना वह ज्ञान है उतनाही ज्ञान तदाकारमय (स्वरूप) हो जाता है. इसलिये अर्थपर्यायमेंभी केवल आकारकी विशेषता है (शंका) यद्यपि विषयाकार परिणमनमें केवल आकार विशेषता है किन्तु अविभागप्रतिच्छेदोंकी हीनाधिकतामें तो कभी कुछ अंशोंका नाश हो जाता है और कभी कुछ अंशोंकी उत्पत्ति हो जाती है और इसप्रकार अंशोंके घटने बढ़नेसे गुणोंमें कृशता और स्थूलता आवेगी. तथा हानि होते २ कदाचित् समस्त अविभागप्रतिच्छेदोंका नाश हो जायगा (समाधान) द्रव्यमें एक अगुरुलघुगुण है जिसके निमित्तसे किसीभी शक्तिका कभीभी अभाव नहीं होता यद्यपि अविभागप्रतिच्छेदकी हानि वृद्धि होती है तथापि प्रत्येक शक्ति जो द्र-

व्यके समस्त देशमें व्यापक है वह इस प्रमाणसे कदापि हीनाधिक प्रमाणरूप नहीं होती अथवा गुणकी जघन्य तथा उत्कृष्ट अवस्थाका जो प्रमाण है उस प्रमाणसे हीनाधिकता नहीं होती इसप्रकार पर्यायका कथन समाप्त हुआ.

अब आगे जैनसिद्धान्तके जीवभूत अनेकान्तका कथन करते हैं अनेकान्तका विग्रह पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है, अनेके अन्ताः धर्माः यस्मिन् भावे सोऽयमनेकान्तः, अर्थात् जिसपदार्थमें अनेक धर्म होंय उसको अनेकान्त कहते हैं, सो संसारमें जितने पदार्थ हैं वे सर्व अनेकान्तात्मक हैं, जैसे एक पुरुषमें पितापना, पुत्रपना, मामापना, भानजापना, काकापना, भतीजापना, इत्यादि अनेक धर्म पाये जाते हैं, यद्यपि ये धर्म परस्पर विरुद्धसे दीखते हैं, परन्तु वास्तवमें विरुद्ध नहीं है क्योंकि, ये धर्म अपेक्षारहित नहीं हैं किन्तु अपेक्षासहित हैं, और वे अपेक्षाभी भिन्न २ हैं, जिस अपेक्षासे पितापना है उसही अपेक्षासे यदि पुत्रपना होता तो वेशक विरोध होता, किन्तु पितापना पुत्रकी अपेक्षासे है, पुत्रपना पिताकी अपेक्षासे है, मामापना भानजेकी अपेक्षासे है, भानजापना मामाकी अपेक्षासे है, काकापना भतीजेकी अपेक्षासे है, और भतीजापना काकाकी अपेक्षासे है, इसमें कुछभी विरोध नहीं है किन्तु वस्तुका स्वरूपही एसा है, इसही प्रकार संसारभरमें जीवादिक जितने पदार्थ हैं वे सब अनेकान्तात्मक (अनेकान्तस्वरूप) हैं.

यद्यपि प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मस्वरूप है परन्तु शब्दमें इतनी शक्ति नहीं है कि, एक शब्द एक समयमें वस्तुके अनेक धर्मोंका प्रतिपादन (कथन) कर सके किन्तु एक शब्द एक समयमें वस्तुके एकही धर्मका प्रतिपादन करता है। शब्दकी प्रवृत्ति वक्ताकी इच्छाके आधीन है इसलिये वक्ता वस्तुके अनेक धर्मोंमेंसे किसीएक धर्मकी मुख्यतासे वचनका प्रयोग करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि, वस्तु सर्वथा इस एक धर्मस्वरूपही है, किन्तु एसा अर्थ है कि, विवक्षितधर्मकी तो मुख्यता है और शेषधर्मोंकी गौणता है, और इन गौणधर्मोंकाही द्योतकस्यात् (कथंचित् अर्थात् किसी अपेक्षासे) शब्द समस्त वाक्योंके साथ गुप्तरूपसे रहता है। यदि इस सीधी दृष्टिसे वस्तुस्वरूपका विचार किया जाय तो संसारमें जो अनेक मतोंमें परस्पर विरोध दीखता है वह सहजहीमें मिट जाय, परन्तु हमारे भोले भाइयोंने वस्तुके एक २ धर्मको सर्वथारूपसे वस्तुका स्वरूप मान रक्खा है इसकारण सर्वत्र विरोधही विरोध दीखता है यदि इन धर्मोंको कथंचित् रूपसे मानें तो कुछभी विरोध नहीं रहै। जैसे कि, छह जन्मांध पुरुषोंने हस्तीके भिन्न २ अंगोंको देखकर हस्तीका भिन्न २ स्वरूपसे निश्चय किया और अपने २ पक्ष सिद्ध करनेके लिये विवाद करने

लगे अर्थात् एक अंधेने हस्तीकी सूंड देखी थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप मूसलाकार निरूपण करता था, दूसरेने हस्तीका कान देखा था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप सूपके आकार निरूपण करता था, तीसरेने हस्तीकी पूंछ देखी थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप दण्डाकार निरूपण करता था, चौथेने हस्तीकी टांग देखी थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप स्तम्भाकार निरूपण करता था, पांचवेंने पेट देखा था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप विटौरेके आकार कहता था, छटेने दांत देखा था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप सोटेके आकार निरूपण करता था, इस प्रकार वे छहो जन्मान्ध, हस्तीके भिन्न २ अंगोंको देखकर भिन्न २ अंगस्वरूप हस्तीका निरूपण करके आपसमें झगड़ते थे, दैवयोगसे इतनेहीमें एक सूझता (आंखसहित) मनुष्य आगया और उनको इस प्रकार झगड़ते हुए देखकर कहने लगा, भाइयो ! तुम व्यर्थ क्यों झगड़ा कर रहे हो तुम सब सच्चे हो, तुमने हस्तीका एक एक अंग देखा है इनही सब अंगोंका जो समुदाय है वही वास्तविक हस्ती है। ठीक ऐसीही अवस्था संसारके मतोंकी है, अनेकान्तात्मक वस्तुके एक एक अंगकोही वस्तुका यथार्थ स्वरूप मानकर अनेक वादी प्रतिवादी परस्पर विवाद कर रहे हैं, यदि ये महाशय एकान्तआग्रहको छोड़कर अनेकान्तात्मक, वस्तुका स्वरूप मानलें तो, परस्पर कुछभी विवाद नहीं रहे। अब उसही अनेकान्तका संक्षेप स्वरूप जीवतत्वपर घटित करके कहते हैं।

एकजीव, यद्यपि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे, एक है तथापि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वही एकजीव अनेकात्मक (अनेक स्वरूप) है, इसकी अनेकात्मकतामें पूर्वाचार्योंने अनेक हेतुओंका उपन्यास किया है उनमेंसे कुछ थोड़ेसे यहां लिखे जाते हैं।

(१) अभाव विलक्षण होनेसे जीव अनेकान्तात्मक है अर्थात् वस्तु भाव (सत्) स्वरूप है और अवस्तु अभाव (असत्) स्वरूप है, अभावस्वरूप अवस्तुके कुछभी भेद नहीं हो सक्ते, क्योंकि जो कोई पदार्थही नहीं है तो भेद किसके कियेजांय, जीवपदार्थ अभावस्वरूप अवस्तुसे विलक्षण भावस्वरूप है, और भावस्वरूपवस्तुमें नानाप्रकार भेद होसक्ते हैं यदि अभावस्वरूप अवस्तुकी तरह भावस्वरूपवस्तुमेंभी भेद नहीं होंगे तो दोनोंमें विशेषताके अभावका प्रसङ्ग आवैगा।

(२) वह भावस्वरूपजीव छह भेदरूप है अर्थात् १ उत्पत्तिस्वरूप, २ अस्ति (मौजूदगी) स्वरूप, ३ परिणामस्वरूप, ४ वृद्धिस्वरूप, ५ अपक्षयस्वरूप और ६ विनाशस्वरूप । जिस समय जीव देवायुके नाश और मनुष्यायुके उदयसे देवपर्यायको छोड़कर मनुष्यरूपसे उत्पन्न होता है उस समय उत्पत्तिस्वरूप है। मनुष्यायुके निरंतर उदयसे मनुष्यपर्यायमें यह जीव अवस्थान करता है इसलिये अस्ति-

स्वरूप है। बाल्यावस्थासे युवावस्थारूप, तथा युवावस्थासे वृद्धावस्थारूप होता है इसलिये परिणामस्वरूप है। मनुष्यपनेको न छोड़ता हुआ छोटेसे बड़ा होता है इसलिये वृद्धिस्वरूप है। ढलती उमरमें क्रमसे जरावस्थाको धारण करता हुआ एक देशहीनताको प्राप्त होता है इसलिये अपक्षयस्वरूप है। मनुष्यपर्यायको छोड़कर पर्यायान्तरको प्राप्त होता है इसलिये विनाशस्वरूप है। इसही प्रकार प्रतिसमय वृत्तिके भेदसे अनन्तस्वरूप होते हैं इसलिये भावस्वरूपजीवके अनेकान्तात्मकपना है।

(३) अथवा वह जीव अस्तित्व, ज्ञेयत्व, द्रव्यत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व आदि अनेक धर्मसंयुक्त है इस कारण अनेकान्तात्मक है।

(४) अथवा जीव अनेक शब्द और अनेक विज्ञानोंका विषय है इसलिये अनेकान्तात्मक है, इसका खुलासा इस प्रकार है कि, संसारमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द दीखते हैं अर्थात् एक पदार्थमें अनेक धर्म है, सो जिस समय वह पदार्थ किसीएक धर्मरूप परिणमै है, उससमय पह पदार्थ उस एक शब्दका वाच्य होता है, इसही प्रकार जब वह पदार्थ द्वितीयादि धर्मरूप परिणमै है, उससमय द्वितीयादि शब्दोंका वाच्य होता है इस प्रकार एक पदार्थ अनेक शब्दोंका विषय है, जैसे कि एकही घट पदार्थ पार्थिव, मार्त्तिक, संज्ञेय, नव, महान इत्यादि अनेक शब्दोंका विषय है इसीप्रकार एकही घट पदार्थ अनेक विज्ञानोंका विषय समझना, इस घटकीही तरह जीवभी देव, मनुष्य, पशु, कीट, बाल, युवा, वृद्ध इत्यादि अनेक शब्द और विज्ञानोंका विषय है इसलिये अनेकान्तात्मक है।

(५) अथवा जैसे एक अग्निपदार्थमें दाहकत्व, पाचकत्व, प्रकाशकत्व आदि अनेक शक्ति हैं, उसही प्रकार एकही जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तसे अनेक विकाररूप परिणमनको कारणभूत अनेक शक्तियोंके योगसे अनेकान्तात्मक है।

(६) अथवा जैसे एक घट अनेक सम्बन्धोंके योगसे पूर्व, पर, अन्तरित, निकट दूर, नवीन, पुराण, समर्थ, असमर्थ, देवदत्तकृत, धनदत्तस्वामिक, संख्या, परिमाण, संयोग, विभाग, पृथक् आदि अनेक नामधारक होता है, उसही प्रकार एकही जीव अनेक सम्बन्धोंके योगसे पिता, पुत्र, स्वामी, सेवक, मामा, भानजा, सुसर, जमाई, साला, बहनेऊ, देशी, विलायती आदि अनेक नामधारक होता है इसलिये अनेकान्तात्मक है।

(७) अथवा जैसे देवदत्तके इन्द्रदत्तकी अपेक्षासे अन्यपना है उसही प्रकार जिनदत्तकी अपेक्षासेभी अन्यपना है, परन्तु जो अन्यपना इन्द्रदत्तकी अपेक्षासे है वही अन्यपना जिनदत्तकी अपेक्षासे नहीं है, यदि दोनोंकी अपेक्षासे एकही अन्यपना मानोगे तो इन्द्रदत्त और जिनदत्तमें एकताका प्रसंग आवेगा, किन्तु जिनदत्त और इन्द्रदत्त भिन्न २ हैं इस कारण दोनोंकी अपेक्षासे अन्यपनाभी भिन्न २ है, इसही प्रकार

संसारमें अनन्त पदार्थ हैं, सो एक जीवके उन अनन्त पदार्थोंकी अपेक्षासे अनन्त अन्यत्व हैं जो ऐसा नहीं मानोगे तो उन सब अनन्त पदार्थोंके एकताका प्रसंग आवैगा किन्तु वे अनन्त पदार्थ एक नहीं हैं, भिन्न २ हैं इस कारण एकजीवके अनन्त पदार्थोंकी अपेक्षासे अनन्त अन्यत्व हैं, इसलिये अनेकान्तात्मक है ।

(८) अथवा जैसे एक घट अनेक रंगोंके सम्बन्धसे लाल, काली, पीली आदि अनेक अवस्थाओंको धारण करता हुआ अनेक रूप होता है, उसही प्रकार एकजीव चारित्र मोहादिक कर्मके निमित्तसे, अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे तीव्र, मंदादि अनन्त अवस्थाओंको धारण करनेवाले क्रोधादिक अनेक भावरूप परिणमन होनेसे अनेकान्तात्मक है ।

(९) अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान, कालके अनन्त समय हैं. एकजीव प्रत्येक समयमें भिन्न २ अवस्थारूप परिणमै है इसलिये अनन्तसमयोंमें अनन्तपरिणामरूप होनेसे अनेकान्तात्मक है ।

(१०) अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप होनेसे एकजीव अनेकान्तात्मक है, भावार्थ यद्यपि एक पदार्थ एकही समयमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है, तो अनन्त समयोंमें एकही पदार्थके अनन्त उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वयंसिद्ध हैं, तथापि एकही पदार्थके एक समयमें एकही उत्पाद अनेक स्वरूप है, उसका खुलासा इस प्रकार है. जैसे एक घट एक समयमें पार्थिवपनेसे उत्पन्न होता है जलपनेसे उत्पन्न नहीं होता है निजाधारभूतक्षेत्रकपनेसे उत्पन्न होता है, अन्यक्षेत्रकपनेसे उत्पन्न नहीं होता है. वर्तमानकालपनेसे उत्पन्न होता है, नकि अतीतानागतकालपनेसे; बडेपनसे उत्पन्न होता है, नकि छोटेपनसे; जिससमय यह घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, कालभावसे उत्पन्न होता है उसही समयमें इसके सजातीय अन्य पार्थिव घट, अथवा ईषद्विजातीय (किंचित् विजातीय) सुवर्णादि घट, तथा अत्यन्त विजातीय पट आदि अनन्त मूर्त्तामूर्त्त द्रव्य, अपने २ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे उत्पन्न होते हैं. प्रकृत घटका उत्पाद, इन अनन्त पदार्थोंके अनन्त उत्पादोंसे भेदरूप होनेसे स्वयं अनन्त भेदरूप है अन्यथा सब पदार्थोंमें अविशिष्टताका प्रसंग आवैगा तथा तीन लोकमें अनन्त पदार्थ हैं, वे अनन्त पदार्थ वर्तमानसमयको छोड़ अतीत और अनागतकालके अनन्त समयोंमें, अनन्त अवस्थास्वरूप हैं, उन अनन्त अवस्थारूप पदार्थोंके सम्बन्धसे, वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रकृत घटका उत्पाद, ऊंचा नीचा, तिर्छा, निकट, दूर आदि दिग्भेदरूप; बड़ा, छोटा, आदि गुणभेदरूप; और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णके उत्कर्ष, अपकर्षस्वरूप अनन्त भेदरूप है। तथा एक घट अपने अवयवरूप अनेक प्रदेशोंका स्कन्ध है, उन अनेक अवयवोंमें उस घटका सर्वत्र सदृश उत्पाद नहीं है किन्तु विषमरूप है,

इसकारण वह घटोत्पाद अनेक स्वरूप है। तथा वह उत्पादस्वरूप घट, जलादिधारण, ग्रहण, प्रदान, अधिकरण, भयजनन, शोकजनन, हर्षजनन, परितापजनन, आदि अनेक कार्यका साधक है इसलिये अनेक स्वरूप है। तथा जिससमयमें वह घटका एक उत्पाद अनेक स्वरूप है उसही समयमें उस उत्पादके प्रतिपक्षी व्ययभी अनेक स्वरूप हैं, क्योंकि व्ययकेविना उत्पाद नहीं हो सक्ता। तथा उसहीसमयमें उत्पाद और व्यय इन दोनोंका प्रतिपक्षी ध्रौव्यभी अनेक स्वरूप है क्योंकि, ध्रौव्यकेविना उत्पाद और व्यय नहीं हो सक्ते, जो ध्रौव्यकेविनाभी उत्पाद और व्यय मानोगे तो वस्तुके अभावका प्रसंग आवैगा क्योंकि जिससमय कुंभकार घटको बना रहा है उससमय घटका उत्पाद कहोगे तो अभी घट पूर्णरूपसे बनही नहीं चुका है तो घटका उत्पाद किसप्रकार कह सक्ते हो, अथवा जब कुंभकार घटको बना चुका उससमयमें घटका उत्पाद कहोगे तो, ध्रौव्यको नहीं माननेवाला जो क्षणिक वादी उत्पादके समयसे अनन्तर समयमें व्यय मानता है, अन्यथा ध्रौव्यका अंगीकार हो जायगा, उसके मतानुसार घट विनाशके समयमें घटका उत्पाद हुआ, सोभी विरुद्ध है इसप्रकार ध्रौव्यके न माननेसे उत्पद्यमान अवस्थामेंभी घटका उत्पाद नहीं कह सक्ते और उत्पन्न अवस्थामेंभी घटका उत्पाद नहीं कह सक्ते तो घटाश्रित व्यवहारके लोपका प्रसंग आया, तथा ध्रौव्यके न माननेवालेके, कारणशक्तिके अभावसे उत्पाद और व्ययशब्दकी वाच्यता घटित नहीं हो सक्ती, इसलिये ध्रौव्य मानना परमावश्यक है। इसहीप्रकार एक जीवके, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकनयके विषयभूत सामान्य विशेषरूप अनन्त शक्तियोंकी अपेक्षासे अर्पित उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक अनन्त स्वरूप होनेसे, अनेकान्तात्मकता है।

(११) अथवा जैसे एक घट अन्वय व्यतिरेक स्वरूप होनेसे सत्, अचेतन, नवीन, जीर्ण इत्यादि अनेक स्वरूप दीखता है, उसही प्रकार एक जीवभी अन्वयव्यतिरेकस्वरूप होनेसे अनेकान्तात्मक है। (शंका) अन्वयव्यतिरेक किसको कहते हैं (समाधान) जो धर्म निरन्तर अनुवृत्तिरूप होते हैं उनको अन्वय कहते हैं जैसे जीवके अस्तित्व, जीवत्व, ज्ञातृत्व, दृष्टत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अमूर्तत्व, असंख्यातप्रदेशत्व, अवगाहत्व, अतिसूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, अहेतुकत्व, अनादिसंबन्धित्व, ऊर्द्धगतिस्वभावत्व, इत्यादि अन्वयधर्म है। जो धर्म व्यावृत्तिरूप, परस्पर विलक्षण, उत्पत्ति स्थिति परिणमन वृद्धि ऱ्हास विनाशस्वरूप हैं उनको व्यतिरेक कहते हैं, जैसे जीवके गति, इन्द्रिय काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या सम्यक्त्वादिक व्यतिरेक धर्म हैं!

इस अनेकान्तात्मक एक जीवका शब्दद्वारा प्रतिपादन दो प्रकारसे होता है अर्थात्

१ क्रमसे २ युगपत् भावार्थ जिससमय, कालादिसे, (इनका स्वरूप आगे कहेंगे) अस्तित्वादिक धर्मोंकी भेदविवक्षा है, उससमय, एक शब्द अनेक धर्मोंका प्रतिपादन करनेमें असमर्थ होनेसे, जीवका निरूपण क्रमसे कहा जाता है; और जिससमय उनही धर्मोंका कालादिसे अभेदवृत्ति तें निजस्वरूप कहा जाता है, उससमय, एकही शब्दके एक धर्म प्रतिपादन मुखसे, समस्त अनेक धर्मोंकी प्रतिपादकता संभव है इसलिये जीवका निरूपण युगपत्पनेसे कहा जाता है। जब युगपत्पनेसे निरूपण होता है तब सकलादेश होता है उसहीको प्रमाण कहते हैं क्योंकि "सकलादेश प्रमाणके आधीन है" एसा वचन है। और जब क्रमसे निरूपण होता है, तब विकलादेश होता है उसहीको नय कहते हैं क्योंकि, "विकलादेश नयके आधीन है" एसा वचन है। (शंका) सकलादेश किसप्रकार है (समाधान) एक गुणकेद्वारा वस्तुके समस्त स्वरूपोंका संग्रह होनेसे सकलादेश है भावार्थ अनेक गुणोंका जो समुदाय है उसको द्रव्य कहते हैं गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है इसलिये उसका निरूपण गुणवाचक शब्दकेविना नहीं हो सक्ता, अतः अस्तित्वादि अनेक गुणोंके समुदायरूप एक जीवका, निरंशरूप समस्तपनेसे, अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचार करि, एक गुणकेद्वारा प्रतिपादन होता है और विभागके कारण दूसरे प्रतियोगी गुणोंकी अपेक्षा नहीं है. इसलिये जिससमय एक गुणद्वारा अभिन्नस्वरूप एक वस्तुका प्रतिपादन किया जाता है उससमय सकलादेश होता है। (शंका) अभेदवृत्ति अथवा अभेदोपचार किसप्रकार है (समाधान) द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वे सम्पूर्ण धर्म अभिन्न हैं इसलिये अभेदवृत्ति है, तथा यद्यपि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वे समस्त धर्म परस्पर भिन्नभी हैं तथापि एकताके अध्यारोपसे अभेदोपचार है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, पूर्वाचार्योंने तत्वाधिगमका हेतु दो प्रकार वर्णन किया है १ स्वाधिगमहेतु २ पराधिगमहेतु, स्वाधिगमहेतु ज्ञानस्वरूप है, उसकेभी दो भेद हैं १ प्रमाण २ नय, पराधिगमहेतु वचनस्वरूप है वह वचनस्वरूप वाक्य दो प्रकारका है १ प्रमाणात्मक २ नयात्मक जिस वाक्यसे एक गुणद्वारा अभिन्नरूप समस्त वस्तुका निरूपण किया जाता है उस वाक्यको प्रमाणवाक्य कहते हैं इसहीका नाम सकलादेश है, और जो वाक्य अभेदवृत्ति और अभेदोपचारका आश्रय न करके वस्तुके किसी एक धर्म विशेषका बोधजनक है उस वाक्यको नयवाक्य कहते हैं इसहीका नाम विकलादेश है. इन दोनोंमेंसे प्रत्येकके सात सात भेद हैं अर्थात् प्रमाणवाक्यके सात भेद हैं इसहीको प्रमाण सप्तभंगी कहते हैं. इसही प्रकार नयवाक्यकेभी सात भंग हैं और इसहीका नाम नयसप्तभंगी है. (सप्तभंग अर्थात् वाक्योंके समूहको सप्तभंगी कहते हैं). सप्तभंगीका

लक्षण पूर्वाचार्योंने इस प्रकार किया है "प्रश्नवशादेकस्मिन्वस्तुन्याविरोधेनविधिप्रतिषेध विकल्पना सप्तभंगी" अर्थात् प्रश्नके वशसे किसी एक वस्तुमें अविरोध रूपसे विधि तथा प्रतिषेधकी कल्पनाको सप्तभंगी कहते हैं जैसे १ स्यादस्त्येवजीवः २ स्यान्नास्त्येवजीवः ३ स्यादवक्तव्यएवजीवः ४ स्यादस्तिनास्तिचजीवः ५ स्यादस्तिचावक्तव्यश्चजीवः ६ स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्चजीवः ७ स्यादस्तिनास्तिचावक्तव्यश्चजीवः अब पहलेही सकलादेशका कथन करते हैं.

सकलादेशमें प्रत्येक पदार्थ प्रति सात सात भंग जानने अर्थात् १ कथंचित् जीव हैही २ कथंचित् जीव नहींही है ३ कथंचित् जीव अवक्तव्यही है ४ कथंचित् जीव है और नहीं है ५ कथंचित् है और अवक्तव्य है ६ कथंचित् जीव है, नहीं है और अवक्तव्य है. इसही प्रकार समस्त पदार्थोंपर लगा लेना. इन सात भंगोंमेंसे पहले "स्यादस्त्येवजीवः" इस प्रथमभंगका अर्थ लिखते हैं.

प्रथमभंगमें चार पद हैं १ स्यात् २ अस्ति, ३ एव, ४ जीवः इनमें जीव पद द्रव्यवाचक है और अस्तिपद गुणवाचक है अर्थात् "जीवः अस्ति" का अर्थ जीवद्रव्य अस्तित्व गुणवान् है, इनमें जीव विशेष्य है और अस्तित्व विशेषण है अर्थात् जीव अस्तित्ववान् है एसा अर्थ हुआ. प्रत्येक वाक्य कुछ न कुछ अवधारण (नियम) अवश्य करता है यदि नियम रहित वाक्य माना जाय तो वाक्यके प्रयोगको अनर्थकता आवेगी, उक्तंच वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये कर्तव्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित् अर्थात् अनिष्टकी निवृत्तिकेवास्ते वाक्यमें अवधारण अवश्य करना चाहिये अन्यथा वाक्य कदाचित् अनुक्तके समानही होगा, इसलिये जीवः अस्ति (जीव अस्तित्ववान है) इस वाक्यमेंभी अवधारण अवश्य होना चाहिये अर्थात अवधारण (नियम) वाचक एव (ही) शब्दका प्रयोग करना चाहिये। जीवः अस्ति ये दो पद हैं इनमेंसे, एव शब्दका प्रयोग जीव पदके साथ करना अथवा अस्ति पदके साथ, जो जीव पदके साथ एवका प्रयोग किया जायगा तो वाक्यका आकार इसप्रकार होयगा "जीव एव अस्ति" अर्थात् जीवही अस्तित्ववान् है और एसी अवस्थामें जीवसे भिन्न पुद्गलादिकके नास्तित्व (अस्तित्वके अभाव) का प्रसंग आया इसलिये जीवके साथ एवकारका सम्बन्ध इष्ट नहीं है, इस कारण अस्तिपदके साथ एवका प्रयोग करना चाहिये, एसा करनेसे वाक्यका आकार इस प्रकार होगा "जीवः अस्ति एव" अर्थात् जीव अस्तित्ववान्ही है, एसा होनेसे जीवमें केवल एक अस्तित्व धर्म (गुण) ही है अन्यधर्म नहीं हैं एसा अनिष्ट अर्थ होने लगैगा, क्योंकि पहले जीवको अनेक धर्मात्मक (अनेकान्तात्मक)

सिद्ध कर चुके हैं इसलिये शेष अनेक धर्मोंकी संभवता दिखलानेके लिये स्यात् श-ब्दका प्रयोग किया है, और एसा होनेसे वाक्यका आकार इस प्रकार हुआ "स्याद-स्त्येवजीवः" अर्थात् कथंचित् (किसी अपेक्षासे) जीव अस्तित्ववान्ही है भावार्थ यद्यपि किसी अपेक्षासे जीव अस्तित्ववान्ही है तथापि किसी दूसरी अपेक्षासे नास्तित्वादि धर्म संयुक्तभी है, और एसा होनेसे पदार्थका स्वरूप निर्दोष सिद्ध होता है। यह स्यात् शब्द यद्यपि अनेकान्त, विधि, विचार आदि अनेक अर्थोंका वाचक है तथापि यहांपर विवक्षा (वक्ताकी इच्छा) से अनेकान्त वाचकका ग्रहण है. (शंका) यदि स्यात् शब्द अनेकान्तवाचक है तो स्यात् शब्दसेही "जीव अनेक धर्मात्मक है" एसा ज्ञान हो जायगा, तो अस्त्यादि पदोंका प्रयोग व्यर्थ है (समाधान) एसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि स्यात् शब्दसे सामान्यरूपसे अनेकान्त पक्षका बोध होनेपरभी विशेष रूपसे बोध करानेके लिये अस्त्यादि पदोंका प्रयोग करना चाहिये, जैसे आम्रफल इस वाक्यमें य-द्यपि फल शब्दसेही फल सामान्यका बोध हो जाता है तथापि फलविशेषका ज्ञान करानेके लिये आम्रशब्दका ग्रहण किया है। अथवा स्यात् शब्द अनेकान्तार्थका द्योतक है, और जो द्योतक होता है वह द्योत्य पदार्थके वाचक शब्दके प्रयोगकी निकटताके-विना द्योतन नहीं कर सक्ता है इसलिये द्योत्यधर्मके आधारभूत पदार्थोंका कथन कर-नेके लिये जीवादिक दूसरे पदोंका प्रयोग है (शंका) यदि स्यात् शब्द अनेकान्तार्थका द्योतक है तो द्योत्यरूप अनेक धर्मोंका प्रतिपादक कौन है (समाधान) पहले कह चुके हैं कि, अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचारसे प्रयुक्त किसी एक धर्मके वाचक शब्दकी ही वाच्यताको शेष अनेक धर्म प्राप्त होते हैं भावार्थ जो शब्द प्रधानभूत किसी एक धर्मका वाचक है, वही शब्द अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचारकी अपेक्षासे शेष अनेक धर्मोंका वाचक है इसही प्रकार दूसरे धर्मोंमें लगा लेनां (शंका) यदि एसा है तो "स्यादस्त्येवजीवः" इस एकही सकलादेशरूप वाक्यसे जीवद्रव्यगत समस्त धर्मोंका संग्रह हो जायगा फिर द्वितीयादिक भंगोंका प्रयोग व्यर्थ है (समाधान) सो ठीक नहीं है जिस वाक्यमें जिस धर्म वाचक शब्दका प्रयोग है वह तो प्रधान है और शेषधर्म गौण है, जैसे प्रथम भंगमें अस्तित्व धर्मवाचक शब्दका प्रयोग है इस कारण अस्तित्व धर्मकी प्रधानता है नास्तित्वादिककी गौणता है, तथा दूसरे भंगमें नास्तित्वधर्म वाचक शब्दका प्रयोग है इसलिये नास्तित्वधर्मकी प्रधानता है शेषधर्मोंकी गौणता है इसही प्रकार अन्यभंगोंमेंभी समझना। इसलिये समस्त भंगोंका प्रयोग सार्थक है उसका खु-लासा इस प्रकार है कि, प्रथमभंगमें द्रव्यार्थिककी प्रधानता और पर्यायकी गौणता है दूसरे भंगमें पर्यायार्थिककी मुख्यता और द्रव्यकी गौणता है जो शब्दके प्रयोगसे ग-

म्यमान होता है उस धर्मकी प्रधानता कही जाती है, और जो शब्द प्रयोगविना अर्थसे गम्यमान होता है उसकी गौणता कही जाती है. तीसरे भंगमें युगपत् दोनों धर्मोंका सद्भाव होनेसे तथा शब्द प्रयोगसे वाच्यता न होनेके कारण, दोनोंकी अप्रधानता है. चौथे भंगमें क्रमसे दोनोंका अस्त्यादि शब्दसे ग्रहण किया है इसलिये दोनोंकी प्रधानता है. पांचवें भंगमें द्रव्यकी प्रधानता और दोनोंकी अप्रधानता है. छटे भंगमें पर्यायकी प्रधानता और दोनोंकी अप्रधानता है. सातवें भंगमें दोनोंकी प्रधानता और दोनोंकी अप्रधानता है (इनका स्पष्टीकरण आगे होगा). (शंका) जब पदार्थ अनेकान्त स्वरूप है ही तो पदार्थकी शक्तिसेही बोध हो जायगा स्यात् शब्दके प्रयोग करनेकी क्या आवश्यकता है (समाधान) यद्यपि जो महाशय स्याद्वाद विद्यामें कुशल हैं उनके स्यात् शब्दकेविनाभी बोध हो सक्ता है तथापि अव्युत्पन्न शिष्यकी अपेक्षासे स्यात् शब्दका प्रयोग आवश्यक है ।

अब यहां अस्तित्व एकान्तपक्षवाला कहता है कि, जीव अस्तित्वस्वरूपही है नास्तिस्वरूप नहीं है. वाक्यमें अवधारण अवश्य होना चाहिये, और उस अवधारणवाचक एव शब्दका जीवके साथ संबन्ध करनेसे अनिष्ट अर्थकी प्रतीति होती है अर्थात् अजीवके अभावका प्रसंग आवेगा. इस कारण एव शब्दका अस्तिके साथ संबन्ध करना, तब जीव हैही एसा अर्थ हुआ. (समीक्षक) यदि एसा है तो इस एकान्तरूप वाक्यका यह भावार्थ हुआ कि, जीवकी सर्व अस्तित्वके साथ व्याप्ति है अर्थात् पुद्गलादिक अजीवका अस्तित्वभी जीव में है । (एकान्ती) नहीं ! नहीं ! एसा नहीं है जीवकी अस्तित्व सामान्यके साथ व्याप्ति है, अस्तित्व विशेषके साथ व्याप्ति नहीं है. व्याप्तिका ग्रहण सामान्यपनेसे होता है जैसे धूमकी जो अग्निकेसाथ व्याप्ति है वह धूमसामान्यकी अग्निसामान्य कैसा है सर्व प्रकारके धूमकी सर्व प्रकारकी अग्निकेसाथ व्याप्ति नहीं है अर्थात् धूमसामान्य, अग्निसामान्यजन्य है, सर्वप्रकारकधूम सर्वप्रकारक अग्निजन्य नहीं है किंतु अग्निसामान्यजन्य है, लकड़ी कोला छाना आदिगत अग्नि व्यक्तिजन्य नहीं है (समीक्षक) यदि एसा है तो अवधारणकी निष्फलता तुम्हारेही वचनसे सिद्ध हो गई क्योंकि, तुम्हारा वचन इस प्रकार है कि, धूम अग्निसामान्य जन्य है, अग्नि विशेषजन्य नहीं है. (एकान्ती) जो धूमविशेष जिस अग्निविशेषसे उत्पन्न हुआ है वह धूम उस स्वगत अग्निविशेषजन्य तो हैही (समीक्षक) जब आप स्वगत एसा विशेषण लगाते हैं तो आपके इस वाक्यसे यह स्पष्ट तया सिद्ध होता है कि, कोई धूम विशेष स्वगतअग्निजन्य है परगत अग्निजन्य नहीं है, तो कहिये अब अवधारण कहां रहा, और अवधारणकेविना वाक्यकी स्थिति ऐसी होगी कि, धूम अग्निजन्य है

और इस प्रकार अग्निजन्यत्वका अवधारण न होनेसे अग्निजन्यत्वके अभावकाभी प्रसंग आया. इसही प्रकार यदि अस्तित्वसामान्यसे जीव है पुद्गलादिगत अस्तित्वव्यक्तिसे जीव नहीं है, इस कारण "पुद्गलादिके अस्तित्वसे जीव नहीं" एसे आपके वाक्यसेही सिद्ध होता है कि, आप अस्तित्वके दो भेद स्वीकार करते हैं अर्थात् अस्तित्वसामान्य और अस्तित्वविशेष, और एसा होनेपर अस्तित्वसामान्यसे जीव है और अस्तित्वविशेषसे जीव नहीं है इसलिये कथंचित् जीव नहीं है एसा फलितार्थ हुआ अर्थात् अवधारणकी निष्फलता हुई, अवधारण तो तब फलवान् होता जब सब प्रकारसे जीवके अस्तित्व होता और किसीभी प्रकार नास्तित्व नहीं होता, और जब आपका एसा नियमही नहीं है तो अवधारणकी सफलता कैसे होय, और जो अवधारणकी सफलताकेवास्ते एसे नियमको मानोगे तो पुद्गलादिकके अस्तित्वसेभी जीव है एसे अनिष्ट अर्थकी प्रतीति होयगी. इस प्रकार "स्यादस्त्येवजीवः" इन चारों पदोंका प्रयोग समुचित है. अब आगे यह अस्तित्व किस अपेक्षासे है सोई दिखलाते हैं.

स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे जीव है और परद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे जीव नहीं है क्योंकि उनके अप्रस्तुतपना है, जैसे घट द्रव्यसे पृथ्वीपनेसे, क्षेत्रसे इस क्षेत्रस्थपनेसे, कालसे वर्तमानकालसंबंधीपनेसे, और भावसे रक्तताआदिसे है, परद्रव्यक्षेत्रकालभावसे नहीं है क्योंकि उनके अप्रस्तुतपना है अर्थात् परद्रव्यक्षेत्रकाल भावसंबंधीपनेसे नहीं है और इस प्रकार स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, ये दो वाक्य सिद्ध हुए. यदि "स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासेही अस्तित्व है, परद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे नास्तित्व है" एसा नियम नहीं मानोगे तो घटघटही नहीं होसक्ता क्योंकि एसा नियम न माननेसे उस घटका किसी नियमित द्रव्यक्षेत्रकालभावसे सम्बन्धही नहीं ठहरेगा और एसी अवस्थामें आकाशके पुष्पसमान अभावस्वरूपका प्रसंग आवैगा, अथवा जब घटका अनियमित द्रव्यक्षेत्रकालभावसे सम्बन्ध है तो सर्वथा भावस्वरूप होनेसे, वह सामान्य पदार्थ हुआ घट नहीं होसक्ता, जैसे महासामान्य अनियत द्रव्यादिसे संबंधित होनेके कारण सामान्य पदार्थ है उसही प्रकार घटभी सामान्यरूप ठहरेगा घट नहीं होसक्ता, उसका खुलासा इस प्रकार है कि, जैसे यह घट द्रव्यकी अपेक्षासे पृथ्वीपनेसे है उसही प्रकार जलादिकपनेसेभी होय तो यह घटही नहीं ठहरैगा क्योंकि इस प्रकार द्रव्यके अनियमसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, जीव आदि अनेक द्रव्यस्वरूप होनेका प्रसंग आवैगा. तथा जैसे इस क्षेत्रस्थपनेसे है उसही प्रकार अनियत अन्यसमस्तक्षेत्रस्थपनेसेभी होय तो यह घटही नहीं ठहरैगा क्योंकि आकाशके समान सर्वत्र सद्भावका प्रसंग आवैगा, अथवा जैसे वर्तमानघटकालकी अपेक्षासे है उसही प्रकार अतीत पिंडादिकाल,

अथवा अनागतकपालादिकालकी अपेक्षासेभी होय तो वह घटही नहीं ठहरेगा, क्योंकि मृत्तिकाकी तरह सर्वकालसे संबंधका प्रसंग आवैगा, अथवा जैसे इस क्षेत्रकालके संबंधीपनेसे हमारे प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय है उसही प्रकार अतीत अनागतकाल तथा अन्य-देशसंबंधीपनेसेभी हमारे प्रत्यक्षके विषयपनेका प्रसंग आवैगा अथवा जैसे वर्त्तमानक्षेत्र-कालमें जलधारण कर रहा है उसही प्रकार अन्यक्षेत्रकालमेंभी जलधारणका प्रसंग आवैगा. तथा जिसप्रकार नवीनपनेसे घट है उसही प्रकार पुराण तथा समस्तस्पर्शरस-गन्ध वर्णादिपनेसेभी होय तो वह घटही नहीं ठहरेगा क्योंकि एसा माननेसे घटके सर्व भावस्वरूप होनेका प्रसंग आवैगा, जैसे भाव स्पर्श, रस, गंधवर्ण, पृथु, महान्, ऱ्हस्व, पूर्ण, रिक्त आदि अनेक स्वरूप होता है, एसाही घट ठहरेगा परन्तु भाव, घट नहीं है इसलिये घटभी घट नहीं ठहरेगा.

इसही प्रकार जीवपरभी लगाना अर्थात् मनुष्यजीवके स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अ-पेक्षासेही अस्तित्व है, परद्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तित्व नहीं है, यदि परद्रव्यादिकी अपे-क्षासेभी मनुष्यका अस्तित्व होय तो खरविषाणवत् मनुष्यका अभावही ठहरेगा, अथवा अनियत द्रव्यादिस्वरूपसे सामान्य पदार्थका प्रसंग आवैगा, जैसे महासामान्यका कोई नियत द्रव्यादि नहीं हैं उसही प्रकार मनुष्यकाभी नियत द्रव्यादि न होनेसे मनुष्य, सा-मान्य ठहरेगा. भावार्थ जैसे मनुष्य, जीवद्रव्यपनेसे है उसही प्रकार यदि पुद्गलादिपने-सेभी होय तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै, क्योंकि एसा होनेसे पुद्गलादिमेंभी मनुष्यपनेका प्रसंग आवैगा. तथा जैसे इस क्षेत्रस्थपनेसे मनुष्य है उसही प्रकार यदि अन्यक्षेत्रस्थ-पनेसेभी होय तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै, क्योंकि एसा न होनेसे आकाशवत् सर्व-गतपनेका प्रसंग आवैगा. तथा जैसे वर्तमानकालकी अपेक्षासे मनुष्य है उसही प्रकार यदि नारकादि अतीत और देवादि अनागतकालपनेसेभी होय तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै क्योंकि एसा होनेसे सदाकाल मनुष्यपनेका प्रसंग आवैगा, अथवा जैसे वर्तमान-क्षेत्रकालकी अपेक्षासे हमारे प्रत्यक्ष है उसही प्रकार अन्यक्षेत्र तथा अतीत अनागतका-लमेंभी हमारे प्रत्यक्षपनेका प्रसंग आवैगा, तथा जैसे यौवनपनेसे मनुष्य है उसही प्रकार बालवृद्धादिपनेसे अथवा अन्यद्रव्यगतरूपरसादिपनेसेभी होय तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै क्योंकि एसा होनेसे मनुष्यके सर्व भावस्वरूप होनेका प्रसंग आवैगा, इसलिये स्यादस्ति, स्यान्नास्ति ये दो वाक्य सिद्ध होते हैं भावार्थ जीवके स्वसत्ताका सद्भाव और परस-त्ताका अभाव है इसलिये स्यादस्तिस्वरूप है स्यान्नास्तिस्वरूप है, क्योंकि स्वसत्ताका ग्रहण और परसत्ताका त्याग यही वस्तुका वस्तुत्व है यदि स्वसत्ताकाभी ग्रहण न होय तो वस्तुके अभावका प्रसंग आवैगा, तथा जो परसत्ताका त्याग न होय तो समस्त पदार्थ

एकरूप हो जांयगे, अर्थात् जो जीव परसत्ताके अभावकी अपेक्षा न रक्खै तो जीव, जीव न ठहरैगा किन्तु सन्मात्र ठहरैगा, क्योंकि सत्स्वरूप होते संते विशेषस्वरूपसे अनवस्थित है भावार्थ जैसे महासत्ता सत्स्वरूप होकर विशेषस्वरूपसे अनवस्थित होनेसे सामान्यपदवाच्यही होसक्ती है उसही प्रकार जीवभी परसत्ताके अभावकी अपेक्षा न रखनेपर सत्स्वरूप होकर विशेष स्वरूपसे अनवस्थित होनेसे सन्मात्रही ठहरेगा जीव नहीं ठहरेगा. तथा जीवके परसत्ताके अभावकी अपेक्षा होते संतेभी यदि स्वसत्तापरिणतिकी अपेक्षा न करै तोभी उसके वस्तुत्व अथवा जीवत्व नहीं ठहरेगा, क्योंकि स्वसत्ताकाभी अभाव और परसत्ताकाभी अभाव होते संते आकाश पुष्पके समान शून्यताका प्रसंग आवैगा, इसलिये परसत्ताका अभावभी अस्तित्वस्वरूपके समान स्वसत्ताके सद्भावकी अपेक्षा रखता है अर्थात् जैसे अस्तित्वस्वरूप, अस्तित्वस्वरूपसे है, नास्तित्वस्वरूपसे नहीं है उसही प्रकार परसत्ताका अभावभी स्वसत्ताके सद्भावकी अपेक्षा रखता है, इसलिये जीव स्यादस्ति और स्यान्नास्तिस्वरूप है. यदि एसा नहीं मानोगे तो वस्तुके अभावका प्रसंग आवैगा उसका खुलासा इस प्रकार है कि, अभाव समस्त पदार्थोंसे निरपेक्ष, अत्यन्त शून्य पदार्थका प्रतिपादक और दूसरेके अन्वयके अवलंबनसे रहित है; तथा भाव अभावसे निरपेक्ष, समस्त सद्रूपवस्तुका प्रतिपादक और व्यतिरेकके अवलम्बनसे रहित है; इसलिये कोईभी वस्तु सर्वथा भावस्वरूप अथवा सर्वथा अभावस्वरूप नहीं होसक्ती, क्या कभी किसीने किसी वस्तुको सर्वथा भावस्वरूप अथवा सर्वथा अभावस्वरूप देखा है? कदापि नहीं! यदि वस्तु सर्वथा भावस्वरूप अथवा सर्वथा अभावस्वरूप होय तो वस्तु वस्तुही नहीं ठहरेगी क्योंकि सर्वथा अभावस्वरूप माननेसे आकाशके पुष्प समान-शून्यताका प्रसंग आवैगा, और जो सर्वथा भावस्वरूप वस्तुको माना जाय तो वस्तुका प्रतिपादनही नहीं होसक्ता क्योंकि जब सर्वथा भावस्वरूप है तो जैसे भावके सद्भावकी अपेक्षासे है उसही प्रकार अभावके सद्भावकी अपेक्षासेभी होनेपर भावापेक्षित वस्तुत्वकी तरह अभावापेक्षित अवस्तुत्वकाभी प्रसंग आया और एसी अवस्थामें वही वस्तु और वही अवस्तु होनेसे वस्तुका प्रतिपादनही नहीं होसक्ता, क्योंकि अभाव भावसे विलक्षण है इसलिये क्रिया और गुणके व्यपदेशसे रहित है और भाव अभावसे विलक्षण है इसलिये क्रिया और गुणके व्यपदेशसहित है, और भाव और अभावकी परस्पर अपेक्षासे अभाव अपने सद्भाव और भावके अभावकी अपेक्षा रखता हुआ सिद्ध होता है और इसही प्रकार भावभी अपने सद्भाव और अभावके अभावकी अपेक्षा रखता हुआ सिद्ध होता है. यदि अभाव एकान्तसे है एसा मानोगे तो सर्वथा अस्तिस्वरूप माननेसे अभावमें भाव और अभाव दोनोंके सद्भावका प्रसंग आया और एसी

अवस्थामें भाव और अभावका संकर होनेसे अस्थितस्वरूपपनेसे दोनोंके अभावका प्रसंग आया. और यदि अभाव एकान्तसे नहीं है एसा मानोगे तो जैसे अभावमें भावका अभाव है उसही प्रकार अभावकेभी अभावका प्रसंग आवैगा और एसा होनेसे आकाशके पुष्पोंकाभी सद्भाव ठहरेगा. इसही प्रकार भाव एकान्तमेंभी लगाना, इसलिये भाव स्यात् है स्यात् नहीं है तथा अभावभी स्यात् है स्यात् नहीं है इसही प्रकार जीवभी स्यात् है स्यात् नहीं है एसा निश्चय करना योग्य है.

(शंका) विधि होतें संतेही निषेधकी प्रवृत्ति होती है इस न्यायसे जब जीवमें पुद्गलादिककी सत्ता प्राप्तही नहीं है तो उसका निषेध करनेका क्या प्रयोजन? अर्थात् जब जीवोनास्ति इस पदका यह अर्थ है कि, जीवमें पुद्गलादिककी सत्ता नहीं है तो जब जीवमें पुद्गलादिककी सत्ताकी प्राप्तिही नहीं तो निषेध क्यों? (समाधान) जीवभी पदार्थ है और पुद्गलादिकभी पदार्थ हैं इसलिये पदार्थ सामान्यकी अपेक्षासे जीवमें पुद्गलादिक समस्त पदार्थोंका प्रसंग संभवही है, परन्तु पदार्थ विशेषकी अपेक्षासे जीव पदार्थके अस्तित्वका स्वीकार और पुद्गलादिकके अस्तित्वके निषेधसेही जीव स्वरूपलाभको प्राप्त होसक्ता है अन्यथा यह जीवही नहीं ठहरेगा क्योंकि जब पुद्गलादिकके अस्तित्वका निषेध नहीं है तो जीवमें पुद्गलादिककाभी ज्ञान होने लगेगा और एसी अवस्थामें एकही पदार्थमें समस्त पदार्थोंका बोध होनेसे व्यवहारके लोपका प्रसंग आवैगा. सिवाय इसके जीवमें जो पुद्गलादिकका अभाव है सो जीवकाही धर्म है नाकि पुद्गलादिकका, क्योंकि जैसे जीवका अस्तित्व जीवके आधीन होनेसे जीवका धर्म है उसही प्रकार पुद्गलादिकका अभावभी जीवके आधीन होनेसे जीवकाही धर्म है इसलिये जीवकी स्वपर्याय है, परन्तु पुद्गलादिकपरसे विशेष्यमाण है इसलिये उपचारसे परपर्याय है, सो ठीकही है क्योंकि वस्तुके स्वरूपका प्रकाशन स्वविशेषण तथा परविशेषणके आधीन है.

(शंका) अस्त्येवजीवः इस वाक्यमें अस्ति शब्दके अर्थसे जीवशब्दका अर्थ भिन्नस्वरूप है अथवा अभिन्नस्वरूप है? यदि अभिन्नस्वरूप है तो अस्ति और जीव इन दोनों शब्दोंका अर्थ एकही हुआ और जब दोनों शब्दोंका एकही अर्थ है तो सामानाधिकरण्य नहीं बनसक्ता, अनेक पदार्थोंके एक आधार होनेको सामानाधिकरण्य कहते हैं, परन्तु जब अस्ति और जीव इन दोनों शब्दोंका एकही अर्थ है तो सामानाधिकरण्य कैसे होयगा, और जब सामान्याधिकरण्य नहीं तो विशेष्य विशेषणभावही नहीं बनसक्ता, क्योंकि घट और कुटशब्दकी तरह अस्ति और जीव ये दोनों शब्द पर्यायवाची हुए इसलिये दोनोंमेंसे किसीएक शब्दकाही प्रयोग समुचित है अन्यथा पुनरुक्त दोष आवैगा. अथवा सत्व समस्त द्रव्य पर्यायोंसे संबंधित है इसलिये उस सत्वसे अभिन्नस्वरूप

जीवभी वैसाही हुआ इसलिये समस्त तत्वोंके अविशेषतासे जीवत्वका प्रसंग आया, तथा जीवके सत्स्वरूप होनेसे चेतना, ज्ञान, दर्शन, सुख, क्रोध, मान, माया, लोभ, नारकत्व, मनुष्यत्व आदि जीवके स्वरूपोंके अभावका प्रसंग आवैगा. अथवा जब अस्तित्व जीवस्वरूप है तो जीव पुद्गलादिक समस्त द्रव्योंमें सत् ज्ञान तथा सत्शब्दकी प्रवृत्तिके अभावका प्रसंग आवैगा. और जो अस्ति शब्दके अर्थसे जीव शब्दके अर्थको भिन्नस्वरूप मानोगे तो स्वयं जीवकेही अभावका प्रसंग आवैगा क्योंकि अस्ति शब्दके अर्थ "सद्भाव" से भिन्नस्वरूप माना है, जैसे खरविषाण (गधेके सींग) सद्भावसे भिन्न अभावस्वरूप है उसही प्रकार जीवभी सद्भावसे भिन्न अभावस्वरूप ठहरेगा, अथवा जब अस्ति शब्दका अर्थ जीवशब्दके अर्थसे भिन्नस्वरूप है तो अस्ति शब्दका अर्थ अस्तित्व जीवस्वरूप नहीं ठहरेगा, इस प्रकार जीवका अभाव होनेसे जीवाश्रित मोक्षादिककेभी अभावका प्रसंग आया और इसही प्रकार अस्तित्वभी जैसे जीवसे अर्थान्तर हुआ उसही प्रकार अन्य पदार्थोंसेभी अर्थान्तर होनेसे निराश्रयपनेसे अभावस्वरूपही ठहरेगा, अतएव तदाश्रित व्यवहारकेभी अभावका प्रसंग आया. और जब जीव अस्तित्वसे भिन्नस्वभाव है तो जीवका वह स्वभाव क्या है सो कहना चाहिये।

(समाधान) एसी शंका ठीक नहीं है क्योंकि असत्स्वभाव होनेसे आकाशके पुष्पकी तरह सब असिद्ध है इसलिये जीव शब्दका अर्थ अस्तिशब्दके अर्थसे कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है, उसका खुलासा इस प्रकार है कि, पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे भवनक्रिया और जीवनक्रियामें परस्पर भेद है इसलिये भवन और जीवन भिन्न २ होनेसे एकके ग्रहणसे दूसरेका ग्रहण नहीं हो सक्ता इसलिये अस्ति और जीव इन दोनों शब्दोंके अर्थ भिन्न भिन्न हैं, और द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे भवन और जीवन इन दोनों क्रियाओंमें परस्पर अभिन्नता होनेसे एकके ग्रहणसे दूसरेका ग्रहण हो सक्ता है इसलिये अस्ति और जीव इन दोनों शब्दोंका अर्थ अभिन्न है. इस प्रकार स्यादस्ति और स्यान्नास्ति ये दो भंग सिद्ध हुए क्योंकि वाच्य, वाचक और ज्ञानकी इसही प्रकार सिद्धि है।

(शंका) जीवशब्द, जीवअर्थ, और जीवज्ञान ये तीनों, लोकमें विचारसिद्ध हैं; भावार्थ, वर्णाश्रमके माननेवाले उस उस वर्णाश्रमकी क्रियाओंका साधन जीवका अस्तित्व मानकर करते हैं उनको शंकाकार कहता है कि, जब जीवशब्द, जीवअर्थ, और जीवप्रत्यय यह तीनोंही असिद्ध हैं अर्थात् इनका अस्तित्व असिद्ध है तो जीवके अस्तित्वको मानकर वर्णाश्रमसंबंधी क्रियाओंमें प्रवृत्ति किस प्रकार ठीक होसक्ती है. जीवशब्दका वाच्य कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि आकाशके पुष्पसमान उसकी उपलब्धि

(प्राप्ति) किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है, जैसे बाह्य पदार्थ कुछभी न होनेपर स्वप्नमें अनेक पदार्थ दीखते हैं उसही प्रकार विज्ञानही जीवाकार परिणमै है वास्तवमें जीव कोई पदार्थ नहीं है. विज्ञान स्वयं न तो जीवस्वरूप है और न अजीवस्वरूप है किंतु केवल प्रकाशमात्र है, और इसही लिये शब्दद्वारा उसका प्रतिपादनभी नहीं होसक्ता, कदाचित् उसका प्रतिपादनभी किया जाय तो जैसे स्वप्नमें बाह्यवस्तु न होनेपर असत वस्तुके आकारसे ज्ञानका प्रतिपादन (कथन) किया जाता है, उसही प्रकार विज्ञान-काभी निरूपण असत् आकारसेही किया जाता है; और जब असत् आकारसे उसका निरूपण है तो आकाशकुसुम प्रत्यय (ज्ञान) की तरह जीव प्रत्यय (ज्ञान) भी कोई पदार्थ नहीं है. तथा जीवशब्दभी कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि जीवशब्द पदरूप अथवा वाक्यरूप इन दोनोंमेंसे एकरूपभी सिद्ध नहीं होता उसका खुलासा इस प्रकार है कि, शब्द अनेक अक्षरोंका समूह है; उन अनेक अक्षरोंका एक कालमें उच्चारण नहीं हो सक्ता किन्तु उनका उच्चारण क्रमसे होता है; ये अक्षरभी वास्तवमें कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु स्वप्नविषयिक पदार्थोंके समान विज्ञानही स्वयं क्रमसे उन अनेक अक्षरस्वरूप परिणमै है इसलिये अनेक समयवर्ती विज्ञानोंका समूहही जीवशब्द है स्वयं जीवशब्द कोई भिन्न पदार्थ नहीं है, इन विज्ञानोंमेंसे प्रत्येक विज्ञान क्षणिक है अर्थात् प्रतिसमय नाशमान् है और प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थवशवर्ती है अर्थात् प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थ-रूप परिणमै है, इसलिये एक विज्ञान अनेक समयवर्ती पदार्थोंका प्रतिभासक नहीं हो-सक्ता; जीवशब्द अनेक अक्षरोंका समूह है तथा वे अक्षरक्रमसे उच्चारित हैं और वे प्रत्येक अक्षर प्रत्येक समयवर्ती विज्ञानस्वरूप हैं और विज्ञान प्रतिसमय नाशमान् है इस लिये जीवशब्द कोई पदार्थही नहीं होसक्ता क्योंकि प्रथम समयवर्ती प्रथम अक्षररूप विज्ञानका, द्वितीयादि समयवर्ती द्वितीयादि अक्षररूप विज्ञानके समयमें अभाव है इस-लिये जीवशब्द कोई पदार्थही सिद्ध नहीं होसक्ता (समाधान) ऐसा नहीं होसक्ता क्योंकि ऐसा माननेसे लोक प्रसिद्ध शब्द और अर्थके वाच्यवाचक सम्बन्धके अभावका प्रसंग आवैगा, और एसा होनेसे लोकव्यवहारमें विरोध आवैगा, तथा तुम्हारा जो ना-स्तित्वपक्ष है उसकी परीक्षा तथा साधनभी नहीं होसक्ता क्योंकि परीक्षा और साधन शब्दाधीन हैं और शब्दको तुम कोई पदार्थही नहीं मानते इसलिये तुम्हारा पक्षही सिद्ध नहीं होसक्ता, इस कारण कथंचित् जीव अस्तिस्वरूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है ऐसा अवश्य मानना चाहिये क्योंकि द्रव्यार्थिकनय पर्यायार्थिकनयको अपनाती हुई प्रवर्ते है और पर्यायार्थिकनय द्रव्यार्थिकनयको अपनाती हुई (अपेक्षा रखती हुई) प्रवर्तै है,

अब अवक्तव्यस्वरूप तीसरे भंगका स्वरूप लिखते हैं. द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे

कथंचित् जीव अस्तिस्वरूप है, और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कथंचित् नास्तिस्वरूप है. जिससमय वस्तुका स्वरूप एक नयकी अपेक्षासे कहा जाता है उससमय दूसरी नय सर्वथा निरपेक्ष नहीं है किन्तु जिसनयकी जहां विवक्षा होती है वह नय वहां प्रधान होती है और जिसनयकी जहां विवक्षा नहीं है, वह वहां गौण होती है. वस्तुको पहले अनेकान्तात्मक कह आए है अर्थात् एकही समयमें एकही वस्तुमें अनेक धर्म होते हैं, उस अनेक धर्मात्मक समस्त वस्तुका किसी एक धर्म (गुण) द्वारा जिसवाक्यसे निरूपण किया जाता है वह वाक्य सकलादेशरूप होता है. उस सकलादेशरूप वाक्यद्वारा जिससमय वस्तुका निरूपण किया जाता है उससमय जिस गुणरूपसे वस्तुका निरूपण किया जाता है वह गुण तो प्रधान होता है और दूसरे गुण अप्रधान होते हैं. वस्तुके समस्तही गुण उस वस्तुमें एक समयमें पाये जाते हैं परन्तु शब्दमें इतनी शक्ति नहीं है कि, उन अनेक गुणोंका एक समयमें निरूपण कर सकै, इसलिये शब्दद्वारा उनका निरूपणक्रमसे किया जाता है, " स्यादस्त्येव जीवः " इस प्रथमभंगमें अस्तित्व धर्मकी मुख्यता है और " स्यान्नास्त्येवजीवः " इस द्वितीयभंगमें नास्तित्वधर्मकी मुख्यता है, सो इन दोनों धर्मोंकी मुख्यतासे जीवका कथन एककालमें (युगपत्) नहीं है किन्तु क्रमसे (एकके पीछे दूसरा) है. यदि एकहीकाल (युगपत) इन दोनों धर्मोंकी विवक्षा होय तो शब्दद्वारा उसका निरूपणही नहीं होसक्ता, क्योंकि शब्दमें ऐसी शक्तिही नहीं है अथवा संसारमें एसा कोई शब्दही नहीं है जो वस्तुके अनेक धर्मोंका निरूपण कर सकै और न ऐसा कोई पदार्थही है कि, जिसमें एक कालमें एक शब्दसे अनेक गुणोंकी वृत्ति निरूपण होसकै. इसलिये युगपत् अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनों धर्मोंकी विवक्षासे जीव **कथंचित् अवक्तव्य** (तीसरा भंग) है, भावार्थ इस भंगमें अवधारणात्मक (निश्चयात्मक) प्रतियोगी दो धर्मों (अस्तित्व और नास्तित्व) के द्वारा युगपत् एक कालमें एक शब्दसे समस्तरूप एक पदार्थकी अभेदरूपसे निरूपण करनेकी इच्छा है इसलिये जीव अवक्तव्य है. क्योंकि न तो कोई एसा पदार्थही है कि, जिसमें प्रतियोगी दो धर्मोंका युगपत् एक शब्दसे निरूपण होसकै और न एसा कोई शब्दही है कि, जो एक कालमें एक पदार्थके दो प्रतियोगी धर्मोंका निरूपण कर सकै. यहां कहनेका अभिप्राय ऐसा है कि, जीव अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्वादि अनेक धर्मस्वरूप (अनेकान्तात्मक) है. इस अनेकान्तात्मजीवका निरूपण दो प्रकारसे होता है एक सकलादेशरूपवाक्यसे और दूसरे विकलादेशरूपवाक्यसे, सकलादेशरूपवाक्यसे एक गुणद्वारा अभेद विवक्षासे समस्तरूप वस्तुका निरूपण किया जाता है, और विकलादेशरूपवाक्यसे किसीएक गुणकाही निरूपण किया जाता है. सकलादेशरूपवाक्यमें

एक गुणद्वारा समस्त गुणोंका जो संग्रह किया जाता है वह कालादिक (आदि शब्दसे आत्मरूप, अर्थ, सम्बन्ध, उपकार, गुणिदेश, संसर्ग और शब्दका ग्रहण करना) से अभेदवृत्तिकी अपेक्षासे है, भावार्थ जीवमें जिससमय अस्तित्व धर्म हैं उसही समय नास्तित्वादिक धर्म हैं इसलिये कालसे अभेदवृत्ति है १ जैसे अस्तित्व धर्म जीवका गुण है उसही प्रकार नास्तित्वादिक धर्मभी जीवके गुण हैं इसलिये आत्मरूपसे अभेदवृत्ति है, २ जो जीवरूपअर्थ (पदार्थ) अस्तित्वधर्मका आधार हैं वही नास्तित्वादिक धर्मोंकाभी आधार है इस प्रकार एक आधार वृत्तिता है सोही अर्थसे अभेदवृत्ति है. ३ जैसे अस्तित्वधर्मका जीवके साथ कथंचित्तादात्म्य सम्बन्ध है उसही प्रकार नास्तित्वादिक धर्मोंकाभी जीवके साथ कथंचित्तादात्म्य संबंध है इसलिये संबंधसे अभेदवृत्ति है. ४ जैसे अस्तित्वधर्म, जीव और अस्तित्वमें विशेष्य विशेषणरूप बोधजनकत्व उपकार करता है उसही प्रकार नास्तित्वादिक धर्मकाभी उपकार है इसलिये एक कार्यजनकत्व उपकारसे अभेदवृत्ति है. ५ जीवके जिसदेशमें अस्तित्वधर्म है उसही देशमें नास्तित्वादिक धर्मभी हैं इसलिये गुणिदेशसे अभेदवृत्ति है. ६ जिस प्रकार एकवस्तुस्वरूपसे अस्तित्वका जीवमें संसर्ग है उसही प्रकार नास्तित्वादिक धर्मोंकाभी है इसलिये संसर्गसे अभेदवृत्ति है. ७ (शंका) संसर्ग और सम्बन्धमें क्या भेद है (समाधान) कथंचित्तादात्म्य लक्षणसम्बन्धमें अभेद प्रधान है और भेद गौण है किन्तु संसर्गमें भेद प्रधान है और अभेद गौण है। जो अस्तिशब्द अस्तित्व धर्मस्वरूप जीवका वाचक है, वही अस्तिशब्द समस्त अनन्त धर्मस्वरूप जीवका वाचक है इसलिये शब्दसे अभेदवृत्ति है. ८ इस प्रकार अष्टभेदस्वरूप कालादिकसे पर्यायार्थिकनयकी गौणतासे और द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानतासे अभेदवृत्ति है. इस सकलादेशके सात भंग हैं उनमेंसे पहले भंग (स्यादस्त्येवजीवः) में अस्तित्वगुणके द्वारा नास्तित्वादिक अन्यधर्मोंका संग्रह है इसलिये अस्तित्वगुणकी प्रधानता है और अन्यधर्मोंकी अप्रधानता है. दूसरे भंग (स्यान्नस्त्येवजीवः) में नास्तित्वधर्मकेद्वारा अन्य समस्तधर्मोंका संग्रह है इसलिये नास्तित्वधर्मकी प्रधानता है अन्यसमस्तधर्मोंकी अप्रधानता है भावार्थ सकलादेशवाक्यमें शब्दद्वारा जिस धर्मका उच्चारण किया जाता है उस धर्मकी प्रधानता होती है और जो धर्म शब्दसे उच्चारण नहीं किया जाता है किन्तु अर्थसे गम्यमान होता है उसकी गौणता होती है। तीसरे भंग (स्यादवक्तव्यएवजीवः) में अस्तित्व नास्तित्वरूप दो प्रतियोगी गुणोंकेद्वारा एकही कालमें एकही शब्दसे समस्तरूप एक पदार्थकी अभेदरूपसे निरूपण करनेकी इच्छा है इसलिये जीव अवक्तव्य है, क्योंकि न तो कोई ऐसा पदार्थही है कि, जिसमें प्रतियोगी दो धर्मोंका एक कालमें एक शब्दसे निरूपण होसके, और न ऐसा

कोई शब्द ही है कि, जो एक कालमें एक पदार्थके दो प्रतियोगी धर्मोंका निरूपण कर सके ऐसा होनेपर भी जीव सर्वथा अवक्तव्य नहीं है किन्तु कथंचित् अवक्तव्य है अर्थात् जब इन धर्मोंकी युगपत् विवक्षा है तब ही अवक्तव्य है, किन्तु जब दोनों धर्मोंकी प्रधानतासे समस्तरूप वस्तुकी क्रमसे विवक्षा (वक्ताकी इच्छा) है उस समय जीव कथंचित् अस्तिनास्तिस्वरूप है (स्यादस्ति च नास्ति च जीवः) और यही सप्तभंगोंमेंसे चतुर्थभंग है सो यह भी सकलादेशरूप चौथा भंग सर्वथा नहीं है किन्तु कथंचित् है. यदि कोई वस्तुके स्वरूपको सर्वथा वक्तव्यही मानै कथंचित् भी अवक्तव्य नहीं मानै तो इस एकान्तपक्षमें अनेक दूषण आवेंगे। क्योंकि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जब कालादिकसे अभेदवृत्तिका आश्रय किया जाता है तब ही एक समयमें एक धर्मकेद्वारा सकलादेशरूप वाक्यसे वस्तुके समस्त धर्मोंका निरूपण किया जा सक्ता है, किन्तु जब पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा है उससमय कालादिकसे अभेदवृत्तिका संभव नहीं हो सक्ता उसका खुलासा इस प्रकार है.

१ क्योंकि परस्पर विरुद्धगुणोंकी एक कालमें किसी एक वस्तुमें वृत्ति नहीं दीखती, इसालिये उन विरुद्ध दो धर्मोंका वाचक कोई शब्द ही नहीं है और इसही कारण जुदे जुदे, असंसर्गस्वरूप (परस्पर अमिश्रित) तथा अनेकान्तस्वरूप सत्व और असत्व धर्म एक कालमें एक आत्मामें नहीं हैं जिससे कि, आत्माको सत्वासत्व स्वरूप कहा जाय।

२ गुणोंका आत्मरूप (निजस्वरूप) परस्पर भिन्न है, एक गुण दूसरेके स्वरूपमें नहीं रहता है जिससे कि, उन दोनों गुणोंसे युगपत् अभेदस्वरूप कहा जाय.

३ एकान्त पक्षमें सत्वासत्वादिक विरुद्ध गुणोंकी एक अर्थ (द्रव्य) आधाररूप वृत्ति भी नहीं है जिससे कि, अभिन्नाधारपनेसे अभेदस्वरूप युगपत् भाव कहा जाय अथवा किसी एक शब्दसे सत्व और असत्व दोनों धर्मोंका उच्चारण किया जाय.

४ संबंधसे भी गुणोंमें अभिन्नताका संभव नहीं है क्योंकि जैसे छत्रका देवदत्तसे जो सम्बन्ध है वही संबंध दण्डका देवदत्तसे नहीं है किन्तु भिन्न है, अन्यथा दण्ड और छत्रमें एकताका प्रसंग आवैगा, उसही प्रकार सत्वका जो आत्मासे सम्बन्ध है वही सम्बन्ध असत्वका आत्मासे नहीं है किन्तु भिन्न है. अन्यथा सत्व और असत्वके एकताका प्रसंग आवैगा इसलिये सत्व और असत्वका आत्मासे भिन्न सम्बन्ध होनेसे सम्बन्धकी अपेक्षासे भी युगपत् वृत्तिका संभव नहीं है जिससे कि, एक शब्दसे युगपत् निरूपण किया जाय. (शंका) दण्ड और छत्रका देवदत्तके साथ संयोगसम्बन्ध है किन्तु सत्व और असत्वका आत्माके साथ समवाय (तादात्म्य) सम्बन्ध है इसलिये

दृष्टान्त विषम है. (समाधान) ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि समवायसम्बन्ध भी भिन्न पदार्थोंका होता है, जैसे संयोगसम्बन्धमें जिन पदार्थोंका संयोग है वे भिन्न शब्द और भिन्न ज्ञानके विषय हैं उस ही प्रकार समवायसम्बन्धमें जिन पदार्थोंका समवाय है वे पदार्थ भिन्न शब्द और भिन्न ज्ञानके विषय हैं.

५ उपकारकी अपेक्षासे भी गुण परस्पर अभिन्न नहीं हैं क्योंकि हलदादिरंगरूप द्रव्यसे जो वस्त्रादिक रंगे जाते हैं, सो उस हलदादिकमें वर्णगुणके जितने हीनाधिक अंश होते हैं उतना ही रंग वस्त्रपर चढता है, इसही प्रकार उसही हलदमें रसगुणके जितने हीनाधिक अंश होते हैं उतनाही स्वाद उस हलदसंयुक्त दालादिक पदार्थमें होता है इससे सिद्ध होता है कि, एक पदार्थके अनेक गुणोंका उपकार भिन्न २ है. उसही प्रकारसे जीवमेंभी सत्व और असत्व गुण भिन्न २ हैं इसलिये उनका उपकार भी भिन्न २ है इस कारण अभेदस्वरूपसे उन दोनों धर्मोंका वाचक एक शब्द नहीं होसक्ता.

६ गुणीके एक देशमें उपकारका संभव नहीं हैं जिससे कि, एक देशोपकारसे सहभाव होय क्योंकि नीलादिक समस्त गुणके उपकारकपना है और वस्त्रादि समस्त द्रव्यके उपकार्यपना है, गुण उपकारक है और गुणी उपकार्य है, गुण और गुणीका एकदेश नहीं है जिससे कि, समस्त गुणगुणीके उपकार्य उपकारकरूप सिद्धि हो ही जाय और जिससे कि, देशसें सहभावसे किसी एकवाचक शब्दकी कल्पना की जाय.

७ एकांत पक्षमें गुणोंके मिश्रित अनेकान्तपना नहीं है क्योंकि जैसे शवल (चितकबरा) रंगमें अपने अपने भिन्न भिन्न स्वरूपको लिये हुए कृष्ण और श्वेतगुण भिन्न २ हैं उसही प्रकार सत्व और असत्व गुणभी अपने २ भिन्न २ स्वरूपको लिये हुए भिन्न २ हैं इसलिये एकांत पक्षमें संसर्गके अभावसे एक कालमें दोनों धर्मोंका वाचक एक शब्द नहीं है क्योंकि न तो पदार्थमें ही उस प्रकार प्रवर्तनेकी शक्ति है और न वैसे अर्थका सम्बन्ध ही है.

८ एक शब्द एक कालमें दो गुणोंका वाचक नहीं है, और जो ऐसा मानोगे तो सत् शब्द अपने अर्थकी तरह असत् अर्थका भी प्रतिपादक हो जायगा, और लोकमें ऐसी प्रतीति नहीं है क्योंकि उन दो अर्थोंके प्रतिपादक भिन्न २ दो शब्द हैं इस प्रकार कालादिकसे युगपत्भाव (अभेदवृत्ति) के असंभव होनेसे (पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे) तथा एक समयमें अनेकार्थवाचक शब्दका अभाव होनेसे आत्मा अवक्तव्य है. अथवा एक वस्तुमें मुख्य प्रवृत्तिकारि तुल्यबलवाले दो गुणोंके कथनमें परस्पर प्रतिबन्ध (रुकावट) होनेपर प्रत्यक्ष विरुद्ध तथा निर्गुणताका दोष आनेसे

विवक्षित दोनों गुणोंका कथन न होनेसे आत्मा अवक्तव्य है. यह वाक्य भी सकलादेशरूप है क्योंकि परस्पर भिन्नस्वरूपसे निश्चित, गुणीके विशेषणपनेसे युगपत् विवक्षित, और वस्तुके अविवक्षित अन्य धर्मोंको अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचारसे संग्रह करनेवाले सत्व और असत्व गुणोंसे अभेदरूप समस्त वस्तुके कथनकी अपेक्षा है. सो यद्यपि उपर्युक्त अपेक्षासे आत्मा अवक्तव्य हैं तथापि अवक्तव्य शब्दसे तथा पर्यायान्तरकी विवक्षासे अन्य छह भंगोंसे वक्तव्य है इसलिये स्यात् अवक्तव्य है. यदि सर्वथा अवक्तव्य मानोगे, तो बंधमोक्षादि प्रक्रियाके निरूपणके अभावका प्रसंग आवैगा. और इनहीं दोनों धर्मोंके द्वारा क्रमसे निरूपण करनेकी इच्छा होनेपर उसही प्रकार वस्तुके सकलस्वरूपका संग्रह होनेसे चतुर्थ भंग (स्यादस्तिनास्ति च जीवः) भी सकलादेश है और सो भी कथंचित् है यदि सर्वथा उभयस्वरूप मानोगे तो परस्पर विरोध आवैगा तथा प्रत्यक्ष विपरीत और निर्गुणताका प्रसंग आवैगा. अब आगे इन भंगोंके निरूपण करनेकी विधि लिखते हैं.

१ अर्थ दो प्रकारका होता है, एक श्रुतिगम्य, दूसरा अर्थाधिगम्य, जो शब्दके श्रवणमात्रसे प्राप्त होय तथा जिसमें वृत्तिके निमित्तकी अपेक्षा नहीं है उसको श्रुतिगम्य कहते हैं और जो प्रकरणसंभव अभिप्राय आदि शब्दन्यायसे कल्पना किया जाय उसको अर्थाधिगम्य कहते हैं. सो आत्मा अस्ति इस प्रथम भंगमें नरनारकादिक आत्माके समस्त भेदोंका आश्रय न करके इच्छाके वशसे कल्पित सर्वसामान्य वस्तुत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १ तदभाव (उसका प्रतिपक्षभूत अभावसामान्यरूप अवस्तुत्व) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २ युगपत दोनोंकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३ और क्रमसे दोनोंकी अपेक्षासे दोनों स्वरूप है ४.

२ इसही प्रकार श्रुतिगम्य होनेसे विशिष्टसामान्यरूप आत्मत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तदभावरूप अनात्मत्वकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत दोनोंकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे दोनोंकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

३ इसही प्रकार श्रुतिगम्य होनेसे विशिष्टसामान्यरूप आत्मत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है. १, तदभावसामान्य (अंगीकृत प्रथम भंगसे विरोधके भयसे अन्य वस्तुस्वरूप पृथ्वी अप तेज वायु घट गुण कर्म आदिक) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

४ विशिष्टसामान्यरूप आत्मत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तद्विशेषरूप मनुष्यत्वरूपकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

५ सामान्यरूप द्रव्यत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, विशिष्टसामान्यरूप प्रतियोगी अनात्मत्वकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

६ वस्तुकी यथासंभव विवक्षाको आश्रय करके द्रव्यसामान्यकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तत्प्रतियोगी गुणसामान्यकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

७ त्रिकालगोचर अनेक शक्तिस्वरूप ज्ञानादिक धर्मसमुदायकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तद्व्यतिरेक (अनेक धर्मसमुदायके विपक्ष) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

८ धर्मसामान्यसम्बन्धकी विवक्षासे किसी भी धर्म (गुण) का आश्रय होनेसे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तदभाव (किसीभी धर्मका आश्रय न होने) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

९ अस्तित्व, नित्यत्व, निरवयवत्व आदि किसी एक धर्मविशेषसंबंधकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तदभाव (उसके प्रतिपक्षी किसी एक धर्म विशेषसंबंध) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ । अब आगे पांचवें भंगका स्वरूप लिखते हैं.

" स्यादस्ति चावक्तव्यश्च जीवः" यह पंचमभंग तीन स्वरूपसें दो अंशरूप है अर्थात् आस्ति अंश एक स्वरूप और अवक्तव्य अंश दो स्वरूप है. अनेक द्रव्य और अनेक पर्यायस्वरूप जीव (जीवका ज्ञानगुण अनेक द्रव्यमय ज्ञेयस्वरूप परिणमें है इसलिये जीवके अनेक द्रव्यात्मकता है) किंचित् द्रव्यार्थ अथवा पर्यायार्थ विशेषसे आश्रयसे अस्तिस्वरूप है, तथा द्रव्यसामान्य और पर्यायसामान्य अथवा द्रव्य विशेष और पर्याय विशेषको अंगीकार करके युगपत् अभिन्न विवक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है. जैसे जीवत्व अथव मनुष्यत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है, तथा द्रव्यसामान्य और पर्यायसामान्यकी अपेक्षासे वस्तुत्वके सद्भाव और अवस्तुत्वके अभावको अंगीकार करके युगपत् अभेद विवक्षासे जीव अवक्तव्यस्वरूप है, इसलिये उस एकही जीवके एकही समयमें जीवत्वमनुष्यत्व आदि समस्त धर्म विद्यमान होनेसे जीव स्यात् अस्तिस्वरूप और अवक्तव्यस्वरूप

(स्यादस्तिचावक्तव्यश्च जीवः) है, सो यह भंगभी अंशोंकी अभेद विवक्षासे एक अंशद्वारा समस्त अंशोका संग्रह करता है इसलिये सकलादेश है. अब आगे छटे भंगका स्वरूप कहते हैं।

छटा भंग (स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्च जीवः) भी तीन स्वरूपसे दो अंशरूप है अर्थात् एक अंश तो नास्तिरूप है सो एक स्वरूप है और दूसरा अंश अवक्तव्यस्वरूप है सो दो स्वरूप है. अवक्तव्यस्वरूपसे अनुविद्ध (मिला हुआ) नास्तित्वभेदके विना वस्तुमें नास्तित्वधर्मकी कल्पना नहीं होसक्ती क्योंकि नास्तित्वभी वस्तुका धर्म विशेष है भावार्थ वस्तुमें नास्तित्वधर्म पर्यायाश्रित है, उस पर्यायके दो भेद हैं एक सहवर्ती दूसरी क्रमवर्ती, उनमेंसे गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयमादिक तो सहवर्तीपर्याय हैं क्योंकि गत्यादिक १४ मार्गणा ओंमेंसे (इनका स्वरूप आगे कहा जायगा) प्रत्येक मार्गणामें समस्त जीवोंका अंतर्भाव होता है अर्थात् प्रत्येक जीव प्रत्येक मार्गणाके किसी न किसी भेदमें अवश्य गर्भित है; देवादिक, एकेन्द्रियादिक, स्थावरादिक, काययोगादिक, पुरुष वेदादिक, क्रोधादिक, मतिज्ञानादिक इत्यादि क्रमवर्तीपर्याय हैं क्योंकि ये क्रमसे होती हैं. सहवर्ती और क्रमवर्ती दोनोंही प्रकारकी पर्यायोंसे जीव कोई भिन्न पदार्थ नहीं है किन्तु वे धर्म विशेपही अविष्वक् (अभिन्न) सम्बन्धसे जीव व्यपदेश (नाम) को प्राप्त होते हैं और इसही अपेक्षासे जब जीव कोई पदार्थही नहीं है तो नास्तिस्वरूप सिद्ध हुआ. वस्तुत्वकी अपेक्षासे जीव सत्स्वरूप है और तत् प्रतियोगी अवस्तुत्वकी अपेक्षासे असत्स्वरूप है, इन दोनोंकी युगपत् अभेद विवक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है, तो नास्तित्वरूप प्रथमअंश और अवक्तव्यरूप द्वितीय अंश इन दोनोंको साथ अर्पण करनेसे जीव कथंचित् नास्ति और अवक्तव्यस्वरूप (स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्चजीवः) है. यह भंगभी सकला देशरूप है क्योंकि अस्तित्वादिक शेष धर्मोंका समूह जीवसे अविनाभावी होनेके कारण उसहीमें गर्भित होनेसे स्यात् शब्दसे द्योतित है. अब आगे सातवें भंगका स्वरूप कहते हैं.

सातवां भंग (स्यादस्ति च नास्तिचावक्तव्यश्च जीवः) चार स्वरूपसे तीन अंशरूप है अर्थात् अस्त्यंश एक स्वरूप, नास्त्यंश एक स्वरूप और अवक्तव्य अंश दो स्वरूप है. जीव किसी द्रव्य विशेषकी अपेक्षासे अस्तिस्वरूप है, किसी पर्याय विशेषकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है, इन दोनोंकी क्रमसे प्रधानताकी विवक्षासे समुच्चयरूप अस्तिनास्तिस्वरूप है, किसी द्रव्यपर्याय विशेष और किसी द्रव्यपर्याय सामान्यकी युगपत् विवक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है. इन तीनो अंशोंको साथ कहनेकी इच्छासे जीव कथंचित् अस्ति, नास्ति, और अवक्तव्यस्वरूप (स्यादस्ति च नास्तिचावक्तव्यश्च जीवः) है, सो यहभी सकलादेश

है क्योंकि समस्त द्रव्यार्थोंको द्रव्यत्वाभेदविवक्षासे एक द्रव्यार्थ मानकर तथा समस्त पर्यायार्थोंको पर्यायत्वअभेदविवक्षासे एक पर्यायार्थ मानकर विवक्षित समस्तरूप वस्तुका अभेदवृत्ति वा अभेदोपचारसे संग्रह किया है. इस प्रकार सकलादेशका कथन समाप्त हुआ. अब आगे विकलादेशका स्वरूप कहते हैं।

निरंशरूप वस्तुकी गुणोंके भेदसे अंशकल्पनाको विकलादेश कहते हैं भावार्थ यद्यपि निजस्वरूपसे वस्तु अखंड है तथापि उस अखंड वस्तुमें भिन्न २ लक्षणोंको लिये अनेक गुणपाये जाते हैं जैसे कि, अग्नि यद्यपि अखंडरूप एक वस्तु है तथापि उसमे शुक्तत्व, दाहकत्व, पाचकत्व आदि अनेक गुण भिन्न २ लक्षणसहित पाये जाते हैं, अथवा जैसे दूधिया भंगमें दूध, पानी, खांड, भंग, इलायची, कालीमिरच, बदाम आदि अनेक पदार्थ है, उस दूधियाके भंगको पीकर पीनेवाला उसे अनेक स्वादात्मक एक पदार्थ निश्चय करके, इसमें दूधभी है, खांडभी है, इलायचीभी है इत्यादि निरूपण करता है उसही प्रकार अनेक धर्मस्वरूप वस्तुको अखंडरूप एक मानकर उसके अनेक कार्य विशेषोंको देख अनेक धर्मविशेषस्वरूप निश्चय करनेको विकलादेश कहते है. (शंका) अखंड वस्तुके गुणसे भेद किस प्रकार हो जाते हैं (समाधान) देवदत्त और इन्द्रदत्त दोनों मित्र थे, देवदत्त धर्मात्मा और धनदत्त व्यसनी था, देवदत्तके उपदेशसे धनदत्त कुछ कालमें धर्मात्मा होगया तब देवदत्तने धनदत्तसे कहा कि, तू पहले व्यसनी था किन्तु जिनधर्मके प्रभावसे अब धर्मात्मा है, इस दृष्टांतमें धनदत्तका आत्मा यद्यपि एकही पदार्थ है तथापि व्यसनित्व और धर्मात्मत्व गुणकी अपेक्षासे अनेक स्वरूप कहा जाता है. गुणोंके समुदायकोही द्रव्य कहते हैं गुणास भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है, गुण अनेक हैं और परस्पर भिन्नस्वरूप हैं, इसलिये उन अनेक गुणोंके समुदायरूप अखंड एक द्रव्यको पूर्वकथितकालादिककी भेद विवक्षासे अनेकस्वरूप निश्चय करनेको विकलादेश कहते हैं.

सकलादेशकी तरह विकलादेशमेंभी सप्तभंगी है उसका खुलासा इस प्रकार है कि, गुणीको भेदरूप करनेवाले अंशोंमें क्रमसे, युगपत्पनेसे तथा क्रम और युगपत्पनेसे विवक्षाके वशसे विकलादेश होते हैं अर्थात् प्रथम और द्वितीय भंगमें असंयुक्त क्रम है, तीसरे भंगमें युगपत्पना है, चतुर्थमेंसंयुक्त क्रम है, पांचवें और छटे भंगमें असंयुक्तक्रम और यौगपद्य है, और सातवेंमें संयुक्तक्रम और यौगपद्य हैं, भावार्थ सामान्यादिक द्रव्यार्थादेशोंमेंसे किसीएक धर्मके उपलभ्यमान (प्राप्त) होनेसे "स्यादस्त्येवात्मा" यह पहला विकलादेश है, यहां दूसरे धर्मोंका आत्मामें सद्भाव होनेपरभी पूर्वोक्त कालादिककी भेद विवक्षासे शब्दद्वारा निरूपणभी नहीं है और निरास (खंडन) भी

नहीं है इसलिये न उनकी विधि है और न प्रतिषेध है. इसही प्रकार दूसरे भंगोंमेंभी विवक्षित अंशमात्रका निरूपण और शेषधर्मोंकी उपेक्षा (उदासीनता) होनेसे विकलादेश कल्पना लगाना. इस विकलादेशमेंभी विशेष्य विशेषणभाव द्योतनके लिये विशेषणके साथ अवधारण (नियम) वाचक एव शब्दका प्रयोग किया गया है. इस एव शब्दके प्रयोगसे अवधारण होनेसे अस्तित्व भिन्न अन्यधर्मोंकी निवृत्तिका प्रसंग आता है इसही कारण यहांभी स्यात्‌शब्दका प्रयोग किया है भावार्थ स्यात्‌शब्दका प्रयोग करनेसे यह द्योतन किया है कि, आत्मामें जैसे अस्तित्वधर्म है उसही प्रकार नास्तित्वादिक अनेक धर्म हैं. सकलादेशमें उच्चारित धर्मकेद्वारा शेषसमस्त धर्मोंका संग्रह है और विकलादेशमें केवल शब्दद्वारा उच्चारित धर्मकाही ग्रहण है शेषधर्मोंकी न विधि है और न निषेध है. इस प्रकार आदेशके वशसे सप्तभंग होते हैं क्योंकि अन्यभंगोंकी प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव है अर्थात् भंग सातही हैं हीनाधिक नहीं हैं इसका खुलासा इसप्रकार है कि, वस्तुमें किसीएक धर्म तथा उसके प्रतियोगी धर्मकी अपेक्षासे सात भंग होते हैं अर्थात् वस्तु किसीएक धर्मकी अपेक्षासे कथंचित् अस्तिस्वरूप है, उसके प्रतियोगी धर्मकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है और दोनोंकी युगपत् विवक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है, इसप्रकार वस्तुमें किसीएक धर्म और उसके प्रतियोगीकी अपेक्षासे अस्ति, नास्ति, और अवक्तव्य ये तीन धर्म होते हैं इन तीन धर्मोंके संयुक्त और असंयुक्त सातहीभंग होते हैं न हीन होते हैं और न अधिक होते हैं भावार्थ जैसे नौन, मिरच, और खटाई इन तीन पदार्थोंके संयुक्त और असंयुक्त सातही स्वाद होसक्ते हैं हीनाधिक नहीं होसक्ते अर्थात् एक नौनकास्वाद, दूसरा मिरचकास्वाद, और तीसरा खटाईकास्वाद, इसप्रकार तीन तो असंयुक्तस्वाद हैं और एक नौन और मिरचका, दूसरा नौन और खटाईका, तीसरा मिरच और खटाईका, और चौथा नोन मिरच और खटाईका, इसप्रकार चार संयुक्तस्वाद हैं, सब मिलकर सातहीस्वाद होते हैं हीनाधिक नहीं होते, इसही प्रकार जीवमेंभी अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन तो असंयुक्त भंग हैं और अस्तिनास्ति, अस्तिअवक्तव्य, नास्तिअवक्तव्य, और अस्तिनास्तिअवक्तव्य ये चार संयुक्तभंग हैं सब मिलकर सातहीभंग होते हैं हीनाधिक नहीं होते क्योंकि हीनाधिक भंगकी प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव है. यह मार्ग द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनयोंके आश्रित है. इन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंकेही संग्रहादिक भेद हैं. इन संग्रहादिकमेंसे संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र ये तीन नय तो अर्थनय हैं, और शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीन शब्दनय हैं. समस्त वस्तुस्वरूपोंको सत्तामें गर्भित करके संग्रह करनेसे संग्रहनयका विषय सत्ता है. व्यवहारनयका विषय असत्ता है क्योंकि

यह नय भिन्न २ सत्ताका संग्रह न करके अन्यकी अपेक्षासे असत्ताकी प्रतीति उत्पन्न करती है. ऋजुसूत्रनय वर्तमानपर्यायको विषय करती है क्योंकि अतीतका नाश हो चुका और अनागत अभी उत्पन्नही नहीं हुआ है इसलिये उनके व्यवहारका अभाव है, इसप्रकार ये तीन अर्थनय हैं. इन नयोंकी अपेक्षासे संयुक्त और असंयुक्त सप्त-भंग बनते हैं उनका खुलासा इसप्रकार है कि, संग्रहनयकी अपेक्षासे प्रथमभंग है १ व्यवहारनयकी अपेक्षासे दूसरा भंग है २ युगपत् संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षासे तीसरा भंग है ३ क्रमसे संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षासे चतुर्थ भंग है ४ संग्रह और युगपत् संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षासे पंचमभंग है ५ व्यवहार और युगपत् संग्रहव्यवहारनयकी अपेक्षासे छठाभंग है ६ क्रमसे संग्रह व्यवहार और युगपत् संग्रह व्यवहारनयकी अपेक्षासे सातवां भंग है ७ इसही प्रकार ऋजुसूत्रमेंभी लगा लेना. पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं उनमें ऋजुसूत्रनयका विषय अर्थपर्याय है और शब्द समभिरूढ और एवंभूत इन तीन शब्द नयोंका विषय व्यंजनपर्याय है सो ये शब्द-नय अभेद कथन और भेद कथनकी अपेक्षासे शब्दमें दो प्रकारकी कल्पना करती हैं, जैसे शब्दनयमें पर्यायवाचक अनेक शब्दोंका प्रयोग होनेपरभी अभेदविवक्षासे उस एकही पदार्थका ग्रहण होता है तथा समभिरूढनयमें सास्नादिमान् पदार्थ चाहे गतिरूप परिणमै चाहे अन्य क्रियारूप परिणमै परन्तु अभेदविवक्षासे उसमें गो शब्दकीही प्रवृत्ति होती है इसलिये शब्द और समभिरूढ इन दोनों नयोंसे अभेद प्रतिपादन होता है, और एवंभूतनयमें जिस क्रियाका वाचक वह शब्द है उसही क्रियारूप जब वह पदार्थ परिणमै है उससमय वह पदार्थ उस शब्दका वाच्य है इसलिये एवंभूतनयमें भेद कथन है. अथवा दूसरी तरहसे दो प्रकारकी कल्पना है, अर्थात् एक पदार्थमें अनेक शब्दोंकी प्रवृत्ति है १ तथा प्रत्येक पदार्थवाचक प्रत्येक शब्द है २, जैसे शब्दनयमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द हैं, और समभिरूढनयमें पदार्थपरिणतिके निमित्तकेविना एक पदार्थका वाचक एक शब्द है तथा एवंभूतनयमें पदार्थकी वर्तमान परिणतिके निमित्त से एक पदार्थका वाचक एक शब्द है.

(शंका) एक पदार्थमें अस्तित्व नास्तित्वादिक परस्पर विरुद्ध धर्म होनेसे वि-रोध दोष आता है.

(समाधान) एक वस्तुमें अस्तित्व नास्तित्वादिक धर्म अपेक्षासे कहे हैं इसलिये इनमें विरोध नहीं है और न विरोधका लक्षण यहां घटित होता है उसका खु-लासा इसप्रकार है कि, विरोधके तीन भेद हैं १ वध्यघातक, २ सहानवस्थान, और ३ प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक, सो सर्प और न्यौलेमे तथा अग्नि और जलमें वध्यघातकरूप

विरोध है, यह वध्यघातक विरोध एक कालमें विद्यमान दो पदार्थोके संयोगसे होता है। संयोगके विना जल, अग्निको बुझा नहीं सकता। यदि संयोगके विना भी जल अग्निको बुझा देगा, तो संसारमें अग्निके अभावका प्रसंग आवैगा। इसलिये संयोग होनेके पश्चात् बलवान् निर्बलका घात करता है। अस्तित्व नास्तित्वादिक विरुद्धधर्मोंकी एकसमय मात्र भी आप एक पदार्थमें वृत्ति नहीं मानते, तो इन धर्मोंमें वध्यघातकविरोधकी कल्पना किस प्रकार हो सकती है? और जो इन धर्मोंकी एक पदार्थमें वृत्ति मानोगे, तो ये दोनों ही धर्म समान बलवाले हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे किसी एककी प्रबलता के अभावसे वध्यघातकविरोधका अभाव है। इसलिये लक्षणके अभावसे वध्यघातकविरोध नहीं हो सकता। तथा सहानवस्थानविरोध भी नहीं है, क्योंकि उसका भी लक्षण यहां घटित नहीं होता है। सहानवस्थानविरोध भिन्नकालवर्ती दो पदार्थोंमें होता है। जैसे, आमके फलमें पहले हरापन था, पीछे उत्पन्न होता हुआ पीलापन हरेपनका निवारण करता है। सो जीवके अस्तित्व नास्तित्वधर्म पूर्वोत्तरकालवर्ती नहीं हैं। यदि अस्तित्वनास्तित्वका भिन्नकाल मानोगे, तो अस्तित्वके कालमें नास्तित्वका अभाव होनेसे जीव, जीव नहीं ठहरेगा; किन्तु सत्तामात्रका प्रसंग आवैगा। (इसका खुलासा पहले लिखा जा चुका है) तथा नास्तित्वके कालमें अस्तित्वका अभाव होनेसे तदाश्रित बन्धमोक्षके व्यवहारके विरोधका प्रसंग आवैगा, तथा सर्वथा असत्रूप माननेसे स्वरूपलाभके अभावका प्रसंग आवैगा और सर्वथा सत् माननेसे जिस अपेक्षासे असत्की प्राप्ति है, वह भी असंगत ठहरेगी। इसलिये इन धर्मोंमें सहानवस्थानविरोधका संभव नहीं हो सकता। तथा जीवादिकमें प्रतिबंध्यप्रतिबंधकविरोध भी घटित नहीं हो सकता। प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकविरोधका भाव ऐसा है कि, आमके वृक्षका और आमके फलका एक डाली द्वारा संयोग है। जब तक यह संयोग रहता है, तब तक आमका फल वृक्षसे गिरता नहीं, किन्तु जब इस संयोगका अभाव हो जाता है, तब गुरुताके (भारीपनके) निमित्तसे आमका फल पृथ्वीपर गिर पडता है। इसप्रकार डालीका संयोग गुरुताके पतनकार्यका प्रतिबन्धक है, सो जीवका अस्तित्वधर्म, नास्तित्वधर्मके प्रयोजनका इस प्रकारसे प्रतिबंधक नहीं है। क्योंकि जिस समय जीवमें अस्तित्वधर्म है, उस ही समय परद्रव्यादिरूपसे नास्तित्वबुद्धिकी उत्पत्ति दीखती है, तथा जिस समय परद्रव्यादिकी अपेक्षा जीवमें नास्तित्वधर्म है, उस ही समय स्वद्रव्यादिकी अपेक्षासे अस्तित्वबुद्धि दीखती है। इस कारण यह विरोधदोष वचनमात्र है। इस प्रकार अर्पणाके भेदसे जीव अविरुद्ध अनेकान्तात्म है, ऐसा निश्चय हुआ।

अब आगे एकान्तवादमें दोष दिखाते हैं:-१बहुतसे मतावलम्बी पदार्थका स्वरूप सर्वथा भावस्वरूप मानते हैं। इस भावएकान्तमें किसी भी प्रकारसे अभावका अवलम्बन नहीं है। इसलिये चार प्रकारके अभावका अभाव होनसे इसमें चार दोष आते हैं। भावार्थ,-कार्यकी उत्पत्तिसे पहले जो कार्यका अभाव है, उसको प्रागभाव कहते हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिसे पहले मृत्पिंडमें घटका प्रागभाव है, सो इस प्रागभावके न माननेसे घटरूपकार्य द्रव्यमें अनादिताका प्रसंग आवैगा। कार्यका नाश होनेके

पीछे जो अभाव होता है, उसको प्रध्वन्साभाव कहते हैं। जैसे घटविनाशके पीछे कपालादिकमें घटका प्रध्वन्साभाव है। सो इस प्रध्वन्साभावके न माननेसे घटरूपकार्य द्रव्यमें अनन्तताका प्रसंग आवैगा। एक द्रव्यकी एक पर्यायमें उस ही द्रव्यकी किसी दूसरी पर्यायके अभावको अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे घटका पटमे तथा पटका घटमें अन्योन्याभाव है। सो इस अन्योन्याभावके न माननेसे एक द्रव्यकी समस्त पर्यायोंमें एकताका प्रसंग आवैगा। एक द्रव्यमें दूसरी द्रव्यके अभावको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे जीवमें पुद्गलका अभाव है। सो इस अत्यन्ताभावके न माननेसे समस्त द्रव्योंमें एकताका प्रसंग आवैगा।

२ कितने ही महाशय अभावएकान्तको मानते हैं। इस अभावएकान्तमें किसी भी प्रकार भावका अवलम्बन नहीं है। इसलिये उनके मतमें प्रमाणके भी अभावका प्रसंग आया, और प्रमाणका अभाव होनेपर परपक्षका खंडन और स्वपक्षका मंडन ही नहीं हो सकता। इसलिये अभावएकान्त सिद्ध नहीं हो सकता। भाव और अभाव दोनों एकान्तपक्षोंके दूषित होनेसे कोई महाशय भाव और अभाव दोनों पक्षोंका अवलम्बन करते हैं। परन्तु ऐसा माननेसे विरोधदोष सामने खड़ा है। इसलिये कोई महाशय कहते हैं कि, वस्तुका स्वरूप अवाच्य है। परन्तु यह अवाच्यएकान्तपक्ष भी वन नहीं सकता। क्योंकि सर्वथा अवाच्य माननेसे "पदार्थका स्वरूप अवाच्य है" ऐसा वचन ही नहीं कह सकते। इस प्रकार भाव, अभाव, उभय, और अवाच्य ये चारों ही एकान्त सदोष हैं, इसलिये पूर्वदर्शित अपेक्षासे वस्तु कथंचित् भाव (अस्ति) स्वरूप है, कथंचित् अभाव (नास्ति) स्वरूप है, कथंचित् अवक्तव्य है, कथंचित् भावाभावस्वरूप है कथंचित् भावावक्तव्य है, कथंचित् अभावावक्तव्य है, और कथंचित् भावाभावावक्तव्य है। सो ये सातो ही भंग नयके योगसे हैं, सर्वथा नहीं है।

३ अद्वैतएकान्त अर्थात् अभेदएकान्त पक्षमें, कर्ताकर्मादि कारकोंमें, दहनपचनादि क्रियाओंमें, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंमें और घटपटादिक प्रमेयोंमें जो प्रत्यक्ष भेद दिखता है, उसके अभावका प्रसंग आवैगा। तथा पुण्य पाप, सुख दुःख, यह लोक परलोक, विद्या अविद्या, और वन्ध और मोक्ष इत्यादि द्वैत (भेद) रूप जो पदार्थ दीखते हैं, उन सबके अभावका प्रसंग आवैगा। सिवाय इसके अद्वैतकी सिद्धि किसी हेतुसे करते हो, या विना हेतु ही सिद्ध मानते हो? यदि हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि करते हो, तो हेतु और साध्यका द्वैत हो गया। और जो हेतुके विना ही वचनमात्रसे अद्वैतकी सिद्धि मानते हो, तो वचनमात्रसे द्वैतकी सिद्धि क्यों न होगी? अथवा जैसे हेतुके विना अहेतु नहीं हो सकता, भावार्थ—अग्निकी सिद्धिके वास्ते धूमहेतु है और जलादिक अहेतु हैं। सो जो धूमहेतु ही न होय, तो जलादिक अहेतु नहीं वन सकते। क्योंकि निषेधयोग्य पदार्थके विना उसका निषेध नहीं हो सकता। इसलिये द्वैतके विना अद्वैतकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे किसीने कहा कि, यह घट नहीं है। इस वाक्यसे ही सिद्ध होता है कि,

घट कोई पदार्थ है, सो यह नहीं है । इस ही प्रकार द्वैतके विना अद्वैत कदापि नहीं हो सकता।

४ अद्वैतएकान्तपक्षमें अनेक दोष होनेसे कितने ही महाशय पृथक्त्वएकान्त (भेदएकान्त) पक्षका अवलम्बन करते हैं । उनके मतमें "पृथक्त्व नामक एक गुण है, जो समस्तपदार्थोंमें रहता है। और इस ही गुणके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका भिन्न २ प्रतिभास होता है । यदि यह पृथक्त्व गुण न होय, तो समस्त पदार्थ एकरूप हो जाँय" ऐसा माना है, सो इस एकान्त पक्षमें भी अनेक दोष आते हैं । उनका खुलासा इस प्रकार है कि,—घट पदार्थमें घटत्व नामक एक सामान्यधर्म है । यह धर्म संसारभरमें जितने घट हैं, उन सबमें रहता है । यदि यह सामान्यधर्म समस्त घटोंमें नहीं रहता, तो उन समस्त घटोंमें "यह घट है" "यह घट है" ऐसा ज्ञान नहीं होता । इसलिये घटत्व सामान्यकी अपेक्षासे समस्त घट एक हैं । इस ही प्रकार पटत्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्तपट एक हैं, तथा जीवत्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्त जीव एक हैं । और इस ही प्रकार पृथक्त्वगुण भी समस्त पदार्थोंमें रहनेवाला है, अन्यथा समस्त पदार्थोंमें 'यह भिन्न है' 'यह भिन्न है' ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता । इसलिये पृथक्त्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्त पदार्थ एक हैं । यदि पृथक्त्वसामान्यकी अपेक्षासे भी सब पदार्थोंको एक नहीं मानोगे, भिन्न २ मानोगे तो, पृथक्त्व यह उनका गुण ही नहीं हो सकता । क्योंकि यह गुण अनेक पदार्थोंमें रहनेवाला है। परन्तु पृथक्त्वगुणकी अपेक्षा सबको भिन्न २ माननेवालेके पृथक्त्वगुण अनेक पदार्थस्थ नहीं हो सकता, किन्तु भिन्न २ पदार्थका भिन्न २ पृथक्त्वगुण ठहरेगा और ऐसा होनेपर उस गुणके अनेकताका प्रसंग आवैगा। किन्तु सामान्यधर्म एक होकर अनेकमें रहनेवाला है, इसलिये पृथक्त्व सामान्यकी अपेक्षासे समस्त पदार्थ एक हैं । अथवा भेदएकान्तपक्षमें किसी भी प्रकारसे एकता न होनेसे सन्तान (अपने सामान्य धर्मको विना छोड़े उत्तरोत्तरक्षणमें होनेवाले परिणामको सन्तान कहते हैं, जैसे गोरसके दूध दही, छांछ, घी सन्तान हैं।) समुदाय (युगपत् उत्पत्तिविनाशवाले रूपरसादिक सहभावी धर्मोंके नियमसे एकत्र अवस्थानको समुदाय कहते हैं), घटपटादि पदार्थके पुद्गलत्व आदिकी अपेक्षासे साधर्म्य (सदृशता), और प्रेत्यभाव (एक प्राणीका मरणके पश्चात् दूसरी गतिमें उत्पाद) ये एक भी नहीं बन सकते ।

अथवा यदि सत्स्वरूपसे भी ज्ञान ज्ञेयसे भिन्न है, तो दोनोंके अभावका प्रसंग आवैगा । क्योंकि ज्ञानका विषय होनेसे ज्ञानके होनेपर ही ज्ञेय हो सकता है, तथा ज्ञेयके होनेपर ही ज्ञान हो सकता है । क्योंकि ज्ञान ज्ञेयका परिच्छेदक (भिन्न करनेवाला) है । इस प्रकार भेदएकान्तमें अनेक दोष आते हैं । (तथा उभयएकान्त और अवाच्यएकान्तमें त्रिविरोधादिक दोष पूर्ववत् लगा लेना और इस ही प्रकार आगे भी घटित कर लेना ।) इसलिये वस्तुका स्वरूप कथंचित् अभेद रूप है, कथंचित् भेदरूप है। अपेक्षाके विना भेद तथा अभेद एक भी सिद्ध नहीं हो सकते । भावार्थ,—सत्तासामान्यकी अपेक्षा होनेपर अभेदविवक्षासे समस्त पदार्थ अभेदस्वरूप हैं, तथा

द्रव्य, गुण, पर्याय, अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा होनेपर भेदविवक्षा होने समस्त पदार्थ भेदस्वरूप है। इस प्रकार नित्यएकान्त अनित्यएकान्त आदिक अनेक एकान्तपक्ष हैं जिनमें अनेक दोष आते हैं। इसका सविस्तर कथन अष्टसहस्रीमें किया है, वहांसे जानना चाहिये।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें द्रव्यसामान्यनिरूपणनामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अधिकार।

(अजीवद्रव्यनिरूपण)

पहले अधिकारमें द्रव्य सामान्यका निरूपण हो चुका, अब द्रव्य विशेषका निरूपण करनेका समय है। परन्तु द्रव्यविशेषका स्वरूप अलौकिकगणितके जाने विना अच्छी तरह समझमें नहीं आ सकता। क्योंकि द्रव्योंका छोटापन और बड़ापन, तथा गुणोंकी मन्दता और तीव्रता और कालका परिमाण आदिकका निरूपण पूर्वाचार्योंने अलौकिकगणितके द्वारा ही किया है। इसलिये द्रव्यविशेषका निरूपण करनेसे पहले अलौकिकगणितका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

अलौकिक: गणितके मुख्य दो भेद हैं, एक संख्यामान और दूसरा उपमामान। संख्यामानके मूल तीन भेद हैं अर्थात् १ संख्यात, २ असंख्यात, और ३ अनन्त। असंख्यातके तीन भेद हैं अर्थात् १ परीतासंख्यात, २ युक्तासंख्यात, और ३ असंख्यातासंख्यात। अनन्तके भी तीन भेद हैं अर्थात् १ परीतानन्त, २ युक्तानन्त, और ३ अनन्तानन्त। संख्यातका एक भेद और असंख्यात और अनन्तके तीन तीन भेद, सब मिलकर संख्यामानके सात भेद हुए। इन सातोंमेंसे प्रत्येकके जघन्य (सबसे छोटा), मध्यम (बीचके), उत्कृष्ट (सबसे बड़ा)की अपेक्षासे तीन तीन भेद हैं, इस प्रकार संख्यामानके २१ भेद हुए।

एकमें एकका भाग देनेसे अथवा एकको एकसे गुणाकार करनेसे कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती है। इसलिये संख्याका प्रारंभ दो से ग्रहण किया है। और एकको गणना शब्दका वाच्य माना है, इसलिये जघन्य संख्यातका प्रमाण दो है। तीन चार पांच इत्यादि एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यातके भेद हैं। एक कम जघन्य परीतासंख्यातको उत्कृष्टसंख्यात कहते हैं। अब आगे जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण कितना है, सो लिखते हैं।

अलौकिकगणितका स्वरूप लौकिकगणितसे कुछ विलक्षण है। लौकिकगणितसे स्थूल और स्वल्पपदार्थोंका परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिकगणितसे सूक्ष्म और अनन्तपदार्थोंकी हीनाधिकताका बोध कराया जाता है। हमारे बहुतसे संकीर्णहृदय भाई अलौकिकगणितका स्वरूप सुनकर चकित होते हैं। और कहते हैं कि, ऐसा गणित हो ही न सकता, परन्तु उनके ऐसे कहनेसे कुछ उस गणितका अभाव नहीं हो जायगा। संसारमें एकदन्तकथा प्रसिद्ध है कि, एक समय एक राजहंस एक कुएमें गया। कुएके मेंडकने राजहंसका स्वागत करके उच्चासन देकर प्रसंगवश पूछा कि, क्यों जी! आपका मान सरोवर कितना बड़ा है?,

राजहंस—भाई मान सरोवर बहुत बड़ा है ।

मेंडक—(एक हाथ लम्बा करके) क्या इतना बड़ा है !

रा०—नहीं भाई ! इससे बहुत बड़ा है ।

में०—(दोनों हाथ लम्बे करके) तो क्या इतना बढ़ा है !!

रा०—नहीं ! नहीं ! इससे भी बहुत बड़ा है ।

में०—(कुएके एक तटसे साम्हनेके दूसरे तट पर उछलकर) तो! क्या इससे भी बड़ा है !

रा०—हां ! भाई ! इससे भी बहुत बड़ा है.

में०—(झुंझला कर) बस ! तुम बड़े झूठे हो ! इससे बड़ा हो ही नहीं सकता !

राजहंस मेंडकको मूर्ख समझकर चुप हो गया, और उड़कर अपने स्थानको चला गया। इस प्रकार कुएके मेंडककी तरह जो महाशय संकीर्णबुद्धिवाले हैं, उनकी समझमें अलौकिक-गणितका स्वरूप प्रवेश नहीं कर सकता । किन्तु जिनकी बुद्धि गौरवयुक्त है, वे अच्छी तरह समझ सकते हैं । जघन्य परीतासंख्यातका स्वरूप समझनेके लिये जो उपाय लिखा जाता है, वह किसीने किया नहीं था, किन्तु बड़े गणितका परिमाण समझनेके लिये एक कल्पित उपाय मात्र है ।

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, और महाशलाका नामके चार गोल कुण्ड हैं। जिनमेंसे प्रत्येकका व्यास (गोल पदार्थकी एक तटसे दूसरे तटतककी चौड़ाई) एक लक्ष योजन (योजनका प्रमाण यहां दो हजार कोसका समझना) और गहराईका प्रमाण एक हजार योजन है । इनमेंसे अनवस्था कुण्डको गोल सरसोंसे शिखाऊ (पृथ्वीपर अन्नकी राशि-की तरह) भरना । गणितशास्त्रके अनुसार इस अनवस्था कुण्डमें १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{४}{११}$ सरसों समाई । (अपूर्णाङ्कका ग्रहण नहीं करना ।)

इस अनवस्था कुण्डके भरने पर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुंडोंकी गिनती करनेके लिये शलाका कुण्डमें डालनी । मध्यलोक (इसका सविस्तर वर्णन आगे होगा) में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है । इसका व्यास एकलक्ष योजन है । जम्बूद्वीप गोल है, और उसके चारों तरफ खाईकी तरह लवणसमुद्र है । जिसका फांट दो लक्ष योजनका है (यहां भी योजनका प्रमाण दो हजार कोस समझना।) लवण समुद्रको चारों ओरसे घेरकर धातकी खंडद्वीप स्थित है, और धातकी खण्डके चारों ओर कालोदधि समुद्र है । तथा इसही प्रकार द्वीपके आगे समुद्र और समुद्रके आगे द्वीपके क्रमसे असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं । द्वीपकी चौड़ाईसे समुद्रकी चौड़ाई दूनी और समुद्रकी चौड़ाईसे आगेके द्वीपकी चौड़ाई दूनी, इस ही प्रकार अन्तपर्यन्त जानना । किसी द्वीप वा समुद्रकी परिधिके (गोलाईके) एक तटसे दूसरे तटतककी चौड़ाईको

सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्रकी सूची पांच लाख योजन और धातकी खंडद्वीपकी तेरह लाख योजन है।

अब अनवस्था कुंडमेंसे समस्त सरसोंको निकालकर एक द्वीपमें एक समुद्रमें अनुक्रमसे डालते चलिये। जिस द्वीप वा समुद्रमें सब सरसों पूर्ण होकर अन्तकी सरसों डालो, उसही द्वीप वा समुद्रकी सूचीके समान सूचीवाला और १००० योजन गहराईवाला दूसरा अनवस्था कुंड बनाइये। और उसको भी सरसोंसे शिखाऊ भरकर एक दूसरी सरसों शलाका कुंडमें डालिये। इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरसोंकोभी निकालकर जिस द्वीप वा समुद्रमें पहले समाप्ति हुई थी, उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक समुद्रमें डालते चलिये। जहां ये सरसों भी समाप्त हो जांय, वहां उसही द्वीप वा समुद्रकी सूचीप्रमाण चौड़ा और १००० योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनाकर उसे सरसोंसे शिखाऊ भरिये और शलाकाकुंडमें तीसरी सरसों डालिये। इस तीसरे कुंडकी भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रोंमें एक एक सरसों डालते २ जब सब सरसों समाप्त हो जांय, तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुंड भर कर चौथी सरसों शलाका कुंडमें डालिये। इसही प्रकार एक एक अनवस्था कुंडकी एक २ सरसों शलाका कुंडमें डालते २ जब शलाका कुंड भी शिखाऊ भर जाय, तब एक सरसों प्रतिशलाका कुंडमें डालिये। इसही प्रकार एक २ अनवस्था कुंडकी एक २ सरसों शलाका कुंडमें डालते २ जब दूसरी वार भी शलाका कुंड भर जाय, तो दूसरी सरसों प्रतिशलाका कुंडमें डालिये। एक एक अनवस्था कुंडकी एक एक सरसों शलाका कुंडमें और एक २ शलाका कुंडकी एक २ सरसों प्रतिशलाका कुंडमें डालते २ जब प्रतिशलाका कुंड भी भर जाय, तब एक सरसों महाशलाका कुंडमें डालिये। जिस क्रमसे एकवार प्रतिशलाका कुंड भरा, उस ही क्रमसे दूसरी वार भरनेपर दूसरी सरसों महाशलाका कुंडमें डालिये। इसही प्रकार एक २ प्रतिशलाका कुंडकी एक २ सरसों महाशलाका कुंडमें डालते २ जब महाशलाका कुंड भी भर जाय, उस समय सबसे बडे अन्तके अनवस्था कुंडमें जितनी सरसों समाईं, उतना ही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण हैं।

संख्यामानके मूलभेद सात कहे थे, इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे २१ भेद हैं। आगेके मूल भेदके जघन्य भेदमेंसे एक घटानेसे पिछले मूलभेदका उत्कृष्ट भेद होता है। जैसे जघन्यपरीतासंख्यातमेंसे एक घटानेसे उत्कृष्टसंख्यात तथा जघन्ययुक्तासंख्यातमेंसे एक घटानेसे उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है। इसही प्रकार अन्यत्र भी जानना। जघन्य और उत्कृष्ट भेदोंके वीचके सब भेद मध्यम भेद कहलाते हैं। इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्टके स्वरूप जघन्यके स्वरूप जाननेसेही मालूम हो सकते हैं। इसलिये अब आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखा जाता है। जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यातका स्वरूप ऊपर लिखा जा चुका है, अब आगे जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण लिखते हैं।

जघन्यपरीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना । एक विरलन राशि और दूसरी देय राशि । विरलन राशिका विरलन करना, अर्थात् विरलन राशि का जितना प्रमाण है, उतने एक लिखना, और प्रत्येक एकके ऊपर एक २ देयराशि रखकर, समस्त देय राशियोंका परस्पर गुणन करनेसे जो गुणन फल हो, उतना ही जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण है । भावार्थ—यदि जघन्यपरीतासंख्यातका प्रमाण चार ४ माना जाय, तो चारका विरलन कर १ १ १ १ प्रत्येक एकके ऊपर देय राशि चार चार रख कर $\overset{४}{१}\ \overset{४}{१}\ \overset{४}{१}\ \overset{४}{१}$ चारों चौकोंका परस्पर गुणन करनेसे गुणन फल २५६ जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इस ही जघन्य युक्तासंख्यातको आवली भी कहते हैं । क्योंकि एक आवलीमें जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसहीसे गुणाकार करनेसे जो गुणनफल होता है, उसको वर्ग कहते हैं । जैसे पांचका वर्ग पच्चीस है ।) को जघन्यअसंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानन्तका प्रमाण कहते हैं ।

जघन्यअसंख्यातासंख्यात प्रमाण तीन राशि लिखनी, अर्थात् १ विरलन, २ देय, ३ शलाका । विरलन राशिका विरलन कर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देय राशियोंका परस्पर गुणाकार करना, और शलाका राशिमेंसे एक घटाना । इस पाये हुए गुणनफल प्रमाण एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशि करना । विरलन राशिका विरलन कर प्रत्येक एकके ऊपर देय राशि रखकर समस्त देय राशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाका राशिमेंसे एक और घटाना । इस दूसरी वार पाये हुए गुणनफलप्रमाण पुनः विरलन और देय राशि करना और पूर्वोक्तानुसार समस्त देय राशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाका राशिमेंसे एक और घटाना । इस ही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफलप्रमाण विरलन और देयके क्रमसे एक एक वार देय राशियोंका गुणाकार होनेपर शलाका राशिमेंसे एक एक घटाते घटाते शलाका राशि समाप्त हो जाय, उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय, उस प्रमाण पुनः विरलन, देय, और शलाका ये तीन राशि लिखनी । विरलन राशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देय राशि रख देय राशिका परस्पर गुणाकार करते २ पूर्वोक्त क्रमानुसार एक वार देय राशियोंका गुणाकार होनेपर शलाका राशिमेंसे एक २ घटाते २ जब यह द्वितीय वार स्थापन की हुई शलाका राशि भी समाप्त हो जाय, उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुनः विरलन, देय, और शलाका ये तीन राशि लिखनी । पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरी वार स्थापन की हुई शलाका-राशि भी समाप्त हो जाय, उस समय यह अन्तिम गुणनफल रूप जो महाराशि हुई, वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है ।

कथित क्रमानुसार तीन वार तीन तीन राशियोंके गुणनविधानको शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं । आगे भी जहां 'शलाकात्रयनिष्ठापन' ऐसा पद आवै, वहां ऐसा ही विधान समझ

लेना । इस महाराशिमें लोक प्रमाण (लोकका प्रमाण उपमा मानके कथनमें किया जायगा) १ धर्म द्रव्यके प्रदेश, २ लोक प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, ३ लोकप्रमाण एक जीवके प्रदेश, ४ लोक-प्रमाण लोकाकाशके प्रदेश, ५ लोकसे असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण (इसका स्वरूप आगे कहेंगे), और ६ उससे भी असंख्यातलोकगुणा तथापि सामान्यतासे असंख्यातलोकप्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण, ये छह राशि मिलाना । इस योगफल प्रमाण विरलन, देय, और शलाका, ये तीन राशि स्थापन कर पूर्वोक्ता-नुसार शलाका त्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो, उसमें १ वीस कोड़ाकोड़ि सागर (इसका स्वरूप आगे कहेंगे) प्रमाण कल्पकालके समय, २ असंख्यात लोक-प्रमाणस्थितिबन्धाध्यवसायस्थान (स्थितिबन्धको कारणभूत आत्माके परिणाम), ३ इनसे भी असं-ख्यात लोक गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान (अनुभाग बन्धको कारणभूत आत्माके परिणाम) और ४ इनसे भी असंख्यातलोकगुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मनवचनकाय योगोंके अविभागप्रतिच्छेद ये चार राशि मिलाना । इस दूसरे योगफल प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीन राशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसको जघन्य परीतानन्त कहते हैं । जघन्यपरीतानन्तका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्यपरीतानन्त रख सब जघन्यपरीतानन्तोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसको जघन्ययुक्तानन्त कहते हैं । अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्ययुक्तानन्तके समान है । जघन्ययुक्तानंतके वर्गको जघन्यअनन्तानन्त कहते हैं । अब आगे केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्तका स्वरूप लिखते हैं ।

जघन्यअनन्तानन्तप्रमाण विरलन, देय, और शलाका, ये तीन राशि स्थापनकर शलाकात्र-यनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो, वह अनन्तानन्तका एक मध्यम भेद है । [अनन्तके दूसरे दो भेद हैं, एक सक्षयअनन्त और दूसरा अक्षयअनन्त । यहां तक जो संख्या हुई, वह सक्षयअनन्त है । इससे आगे अक्षयअन-न्तके भेद है । क्योंकि इस महाराशिमें आगे छह राशी अक्षयअनन्त मिलाई जाती है । नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते २ जिस राशिका अन्त नहीं आवे, उसको अक्षय अनन्त कहते हैं (इसकी सिद्धि जीवद्रव्याधिकारमें करेंगे)] इस महाराशिमें १ जीवराशिके अनन्तवें भाग सिद्ध-राशि, २ सिद्ध राशिसे अनन्तगुणी निगोदराशि, ३ वनस्पतिराशि, ४ जीवराशिसे अनन्तगुणी पुद्गलराशि, ५ पुद्गलसे भी अनन्तगुणे तीन कालके समय, और ६ अलोकाकाशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योग फल हो, उस प्रमाण विरलन, देय, शलाका ये तीन राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसमें

धर्मद्रव्य और अधर्म-द्रव्यके अगुरुलघुगुणके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद मिलाकर, योगफल प्रमाण विरलन, देय, शलाका स्थापन कर पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करना। इसप्रकार शलाका-त्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनन्तानन्तका भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई, उसको केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेष बचै, उसमें पुनः वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है। उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेंसे घटाकर पुनः मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बड़ा है। उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करनेपर भी केवलज्ञानके प्रमाणसे बहुत कमती रहता है। इसलिये केवलज्ञानके अविभाग-प्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है। इस प्रकार संख्यामानके २१ भेदोंका कथन समाप्त हुआ। अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते हैं।

जो प्रमाण किसी पदार्थकी उपमा देकर कहा जाता है, उसे उपमामान कहते हैं। उपमामानके आठ भेद हैं। १ पल्य (यहां पल्य अर्थात् खासकी उपमा है), २ सागर (यहां लवणसमुद्रकी उपमा है), ३ सूच्यङ्गुल, ४ प्रतराङ्गुल, ५ घनाङ्गुल, ६ जगच्छ्रेणी, ७ जगत्प्रतर और ८ लोक। पल्यके तीन भेद हैं;—१ व्यवहार पल्य, २ उद्धारपल्य, और ३ अद्धापल्य । व्यवहारपल्यका स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है। पुद्गलके सबसे छोटे खंडको परमाणु कहते हैं। अनन्तानन्त परमाणुओंके स्कन्धको अवसन्नासन्न कहते हैं। आठ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, आठ सन्नासन्नका एक तृटरेणु, ८ तृटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुका एक रथरेणु, ८ रथरेणुका एक उत्तम भोग-भूमिवालोंका वालाग्र, ८ उत्तम भोगभूमिवालोंके वालाग्रका एक मध्यमभोगभूमिवालोंका वालाग्र, ८ मध्यम भोगभूमिवालोंके वालाग्रका एक जघन्य भोग भूमिवालोंका वालाग्र, ८ जघन्य भोगभूमि-वालोंके वालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका वालाग्र, ८ कर्मभूमिवालोंके वालाग्रकी एक लीख, आठ लीखोंकी एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, और आठ जौका एक अंगुल होता है। इस अंगुलको उत्सेधांगुल कहते हैं। चतुर्गतिके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर और मन्दिरआदि-कका परिमाण इस ही अंगुलसे वर्णन किया जाता है। इस उत्सेधांगुलसे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल (भरतक्षेत्रके अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्तीका अंगुल) है। इस प्रमाणांगुलसे पर्वत नदी द्वीप समुद्र इत्यादिकका प्रमाण कहा जाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमें जो अंगुल है, उसे आत्मांगुल कहते हैं। इससे झारी कलश धनुष् ढोल हलमूशल छत्र चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है। ६ अंगुलका एक पाद, २ पादका एक विलस्त, २ विलस्तका एक हाथ, ४ हाथका एक धनुष्, २००० धनुष्का एक कोश, और चार कोशका एक योजन होता है। प्रमाणां-गुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासवाला एक गोल गर्त्त (गढ़ा) बनाना। उस गर्त्तको उत्तमभोगभूमिवाले मेंढेके वालोंके अग्रभागोंसे भरना। गणित

करनेसे उस गर्त्तके रोमोंकी संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००० ००००००००००००००० हुई । इस गर्त्तके एक २ रोमको सौ सौ वर्ष पीछे निकालते २ जितने कालमें वे सब रोम समाप्त हो जांय, उतने कालको व्यवहार पल्यका काल कहते हैं । उपर्युक्त रोमसंख्याको सौ वर्षके समय समूहसे गुणा करनेसे व्यवहारपल्यके समयोंका प्रमाण होता है । (एक वर्षके दो अयन, एक अयनकी तीन ऋतु, एक ऋतुके दो मास, एक मासके तीस अहोरात्र, एक अहोरात्रके तीस मूहर्त, एक मुहूर्त्तकी संख्यात आवली, और एक आवलीके जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं) । व्यवहारपल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात कोटिवर्षके समयसमूहप्रमाण खंड करनेसे उद्धारपल्यके रोमखंडोंका प्रमाण होता है । जितने उद्धारपल्यके रोम खंड हैं उतने ही उद्धारपल्यके समय जानने । एक कोटिके वर्गको कोड़ाकोड़ि कहते हैं । द्वीप समुद्रोंकी संख्या उद्धारपल्यसे है । अर्थात् उद्धारपल्यके समयोंको २५ कोड़ाकोड़िसे गुणा करनेसे जो गुणनफल होता है, उतने ही समस्त द्वीपसमुद्र हैं । उद्धारपल्यके प्रत्येक रोमखंडके असंख्यात वर्षके समयसमूहप्रमाण खंड करनेसे अद्धापल्यके रोमखंड होते हैं । जितने अद्धापल्यके रोमखंड हैं, उतने ही अद्धापल्यके समय हैं । कर्मोंकी स्थिति अद्धापल्यसे वर्णन की गई है । पल्यको दस कोड़ाकोड़िसे गुणा करनेसे सागर होता है । अर्थात् दस कोड़ाकोड़ि व्यवहारपल्यका एक व्यवहारसागर, दसकोड़ाकोड़ि उद्धारपल्यका एक उद्धारसागर और दसकोड़ाकोड़ि अद्धापल्यका एक अद्धासागर होता है । किसी राशिको जितनी वार आधा आधा करनेसे एक शेष रहै, उसको अर्द्धच्छेद कहते हैं । जैसे चारको दो वार आधा आधा करनेसे एक होता है, इसलिये चारके अर्द्धच्छेद दो हैं । आठके तीन, सोलहके चार और बत्तीसके अर्द्धच्छेद पांच हैं । इस ही प्रकार सर्वत्र लगा लेना । अद्धापल्यकी अर्द्धच्छेद राशिका विरलनकर प्रत्येक एकेके ऊपर अद्धापल्य रखकर समस्त अद्धापल्योंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न होय, उसे सूच्यंगुल कहते हैं । अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौड़े ऊंचे आकाशमें इतने प्रदेश हैं । सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल और घन (एक राशिको तीन वार परस्पर गुणा करनेसे जो गुणनफल होय, उसे घन कहते हैं । जैसे दोका घन आठ और तीनका घन सत्ताईस है ।) को घनांगुल कहते हैं । पल्यकी अर्द्धच्छेदराशिके असंख्यातवें भागका विरलनकर प्रत्येक एकेके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणनफल होय, उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं । जगच्छ्रेणीमें सातका भाग देनेसे जो भजनफल होय, उसे राजू कहते हैं । अर्थात् सात राजूकी एक जगच्छ्रेणी होती है । जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं । यह तीन लोकके आकाशप्रदेशोंकी संख्या है । इस प्रकार उपमामानका कथन समाप्त हुआ । इन मानके भेदोंसे द्रव्यक्षेत्रकाल और भावका परिमाण किया जाता है । भावार्थ;— जहां द्रव्यका परिमाण कहा जाय, वहां उतने जुदे २ पदार्थ जानना । जहां क्षेत्रका परिमाण कहा

जाय, वहां उतने प्रदेश जानने । जहां कालका परिमाण कहा जाय, वहां उतने समय जानने । और जहां भावका परिमाण कहा जाय, वहां उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानने । इस प्रकार अलौकिक गणितका संक्षेप कथन समाप्त हुआ । अब आगे अजीवद्रव्यका स्वरूप लिखते हैं;—

द्रव्यके मूल भेद दो हैं, एक जीव दूसरा अजीव । जो चेतनागुणविशिष्ट होय, उसको जीव कहते हैं । और जो चेतनागुणरहित अचेतन अर्थात् जड़ होय, उसको अजीव कहते हैं । यद्यपि पूर्वाचार्योंने द्रव्यका विशेष निरूपण करते समय पहले जीवद्रव्यका वर्णन किया है और पीछे अजीवद्रव्यका वर्णन किया है । क्योंकि समस्त द्रव्योंमें जीव ही प्रधान है । परन्तु इस ग्रंथकी प्रारंभीय भूमिकामें हम ऐसी प्रतिज्ञा कर आये हैं कि, यह ग्रंथ ऐसे क्रमसे लिखा जायगा कि, जिससे वाचकवृन्द गुरूकी सहायताके विना स्वतः समझ सकें । इसलिये यदि जीवद्रव्यका कथन पहले किया जाता, तो जीवके निवासस्थान लोकाकाश, तथा जीवकी अशुद्धताके कारणभूत पुद्गलद्रव्यका स्वरूप समझे विना जीवद्रव्यका कथन अच्छी तरह समझमें नहीं आता । सिवाय इसके जीवद्रव्यके कथनमें बहुत कुछ वक्तव्य है और अजीवद्रव्यका कथन जीवद्रव्यकी अपेक्षा बहुत कम है । इसलिये पहले अजीवद्रव्यका कथन किया जाता है ।

उस अचेतनत्वलक्षणविशिष्ट अजीवके पांच भेद हैं । १ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म, ४ आकाश, और ५ काल । इन पांचोंमें जीव मिलानेसे द्रव्यके छह भेद होते हैं । इन छहों द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल क्रियासहित हैं और शेष चार द्रव्य क्रियारहित हैं । तथा जीव और पुद्गलके स्वभावपर्याय और विभावपर्याय दोनों होती हैं । और शेष चार द्रव्योंके केवल स्वभावपर्याय होती हैं, विभाव पर्याय नहीं होती । जिनमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण ये चार गुण होंय, उनको पुद्गल कहते हैं । गतिपरिणत जीव और पुद्गलको जो गमनमें सहकारी है, उसको धर्मद्रव्य कहते हैं । जैसे जल मछलीके गमनमें सहकारी है । गतिपूर्वक स्थितिपरिणत जीव और पुद्गलको जो स्थितिमें सहकारी है, उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं । जैसे गमन करते हुए पथिकोंको स्थित होनेमें भूमि । ये धर्म और अधर्म द्रव्यगतिपूर्वक स्थितिपरिणत जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन कारण हैं, प्रेरक कारण नहीं हैं । भावार्थ;—जैसे मछली यदि गमन करै, तो जल उसके गमनमें सहकारी है । किन्तु ठहरी हुई मछलियोंको जल जबरदस्तीसे गमन नहीं कराता है । अथवा गमन करता हुआ पथिक यदि ठहरै, तो पृथिवी उसके ठहरनेमें सहकारिणी है किन्तु गमन करते हुओंको जबरदस्तीसे नहीं ठहराती । इस ही प्रकार यदि जीव और पुद्गल स्वयं गमन करैं, अथवा गमन करते हुए ठहरें, तो धर्म और अधर्म द्रव्य उनकी गति और स्थितिमें उदासीन सहकारीकारण हैं । किन्तु ठहरे हुए जीव पुद्गलको धर्मद्रव्य बलात् (जबरन्) नहीं चलाता तथा गमन करते हुए जीव पुद्गलको अधर्म द्रव्य जबरन् नहीं ठहराता है । जो जीवादिक द्रव्योंको अवकाश देनेके योग्य होय, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं । इन छहों द्रव्योंमें आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है । शेष पांच द्रव्य सर्वव्यापी नहीं हैं, किन्तु अल्प

क्षेत्रमें रहनेवाले हैं। आकाशके बहु मध्यभागमें लोक है। भावार्थ;—आकाशका कुछ थोड़ासा मध्यका भाग ऐसा है, जिसमें जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य पाये जाते हैं। उतने आकाशको लोकाकाश और जो आकाश केवल आकाशरूप है, अर्थात् उसमें जीवादिक द्रव्य नहीं हैं, उस आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। भावार्थ;—यद्यपि आकाश अखंड और एक द्रव्य है, तथापि जीवादिक अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे जितने आकाशमें जीवादिक पांच द्रव्य हैं, उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं। और शेष आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। जो समस्त द्रव्योंके परिणमनमें उदासीन सहकारी कारण है, उसको कालद्रव्य कहते हैं। जैसे कुंभकारके चाकको नीचेकी कीली यदि चाक भ्रमण करै, तो सहकारी कारण है। किन्तु ठहरे हुए चाकको जबरदस्तीसे नहीं चलाती। इस ही प्रकार कालको उदासीन कारण समझना चाहिये। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों ही भिन्न २ अखंड और एक एक द्रव्य हैं। भावार्थ;—धर्मद्रव्य भी अखंड और एक द्रव्य है तथा अधर्म द्रव्य भी अखंड और एक द्रव्य है। ये दोनों ही द्रव्य लोकाकाशमें तिलमें तेलकी तरह सर्वत्र व्याप्त हैं। जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं, वे सब इस लोकाकाशमें भरे हुए हैं। जैसे एक दीपकका प्रकाश छोटे बड़े गृहरूप आधारके निमित्तसे छोटा बड़ा होता है, उसही प्रकार छोटे बड़े शरीररूप आधारके निमित्तसे जीव भी छोटा बड़ा होता है। जीवमें संकोचविस्ताररूप एक शक्ति है, जिसका कर्मके निमित्तसे परिणमन होता है, और इस ही लिये कर्मका अभाव होनेपर मुक्तजीवके संकोचविस्तार नहीं होता। अतएव मुक्त जीवका आकार अन्तिमशरीरके (जिस शरीरको छोड़कर मोक्षको जावे) समान है। प्रत्येक जीव जो पूर्णरूपसे विस्ताररूप होय, तो समस्त लोकाकाशको व्याप्त कर सकता है। पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्त हैं। पुद्गल द्रव्यके सबसे छोटे खंडको (जिससे छोटा खंड न कभी हुआ और न होगा) परमाणु कहते हैं। लोकमें बहुतसे परमाणु ऐसे हैं, जो अलग २ हैं, और बहुतसे ऐसे हैं कि, जो अनेक परमाणुओंके परस्पर बन्धसे स्कन्ध कहलाते हैं। इस प्रकार पुद्गल द्रव्यके परमाणु और स्कन्ध दो भेद हैं। स्कन्धके अनेक भेद हैं। दो परमाणुओंका स्कन्ध, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणुओंके स्कन्ध, तथा अनन्तानन्त परमाणुओंका महास्कन्ध है। जितने आकाशको पुद्गलका एक परमाणु रोकता है, उतने आकाशको एक प्रदेश कहते हैं। पुद्गलके स्कन्ध कोई एक प्रदेशको रोकते हैं और कोई स्कन्ध दो, तीन, चार, संख्यात और असंख्यात प्रदेशोंको रोकते हैं। (शंका) अनन्तानन्त परमाणुओंके स्कन्ध असंख्यात प्रदेशवाले लोकमें किस प्रकार समाते हैं? (समाधान) आकाशमें इस प्रकारकी अवगाहन शक्ति है जिसके निमित्तसे एक पदार्थसे घिरे हुए आकाशमें और दूसरे पदार्थ भी आ सकते हैं। भावार्थ;—संसारमें छह प्रकारके पदार्थ हैं, १ सूक्ष्मसूक्ष्म, २ सूक्ष्म, ३ सूक्ष्मस्थूल, ४ स्थूलसूक्ष्म, ५ स्थूल, और ६ स्थूलस्थूल। (इनका स्वरूप आगे कहेंगे) इनमेंसे स्थूलस्थूल पदार्थ परस्पर एक दूसरेको रोकते हैं। जैसे एक घड़ेमें गेंहूं भरे हुए हैं, यदि उसमें कोई गेंहू याचने वगैरः स्थूलस्थूल पदार्थ और डालना चाहे, तो नहीं समा सकते। स्थूलपदार्थोंमें कोई पदार्थ एक

दूसरेको रोकते हैं और कोई नहीं रोकते हैं । जैसे एक गिलास पानीसे भरा हुआ है । यदि उसमें पानी या तेल वगैरः डाला जाय तो नहीं समा सकता, किन्तु बताशे डाले जावें तो समा भी सकते हैं । इनके सिवाय शेप चार प्रकारके पदार्थ परस्पर एक दूसरेको नहीं रोकते । जैसे किसी एक मकानमें एक दीपकका प्रकाश भरा हुआ है, उस ही मकानमें सौ दीपकका प्रकाश समा सकता है । अथवा किसीके मतमें समस्त जीव, आकाश और ईश्वर ये सब पदार्थ सर्वव्यापी माने हैं तथा इनके सिवाय पृथिवी, जल, वायु आदिक भी उस ही क्षेत्रमें हैं वे किस प्रकार समाये ? इस लिये असंख्यातप्रदेशी लोकमें अनन्त पुद्गलस्कन्धोंका समवेश बाधित नहीं है । लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, उन एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिकी तरह परस्पर भिन्न २ एक एक कालाणु स्थित है । इन प्रत्येक कालाणुओंको कालद्रव्य कहते हैं । अर्थात् लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, उतने ही काल द्रव्य हैं । भावार्थ;–कालद्रव्य एकप्रदेशी है, प्रत्येक जीव तथा धर्म और अधर्म द्रव्य लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं, आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है और पुद्गल द्रव्य कोई एकप्रदेशी, कोई संख्यात, कोई असंख्यात और कोई अनन्तप्रदेशी है, पुद्गल परमाणु यद्यपि वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे एकप्रदेशी है, तथापि भूत और भविष्यत् पर्यायकी अपेक्षासे बहुप्रदेशी है । क्योंकि इसमें स्निग्धरूक्ष गुणके योगसे स्कन्धरूप होनेकी शक्ति है, इस कारण उपचारसे बहुप्रदेशी है । बहुप्रदेशीको काय कहते हैं और एक प्रदेशीको अकाय कहते हैं । काल एक प्रदेशी है, इसलिये अकाय है और शेप पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं, इसलिये काय हैं । पुद्गलपरमाणु निश्चयनयकी अपेक्षासे अकाय हैं और उपचारनयकी अपेक्षासे काय हैं । छहो द्रव्योंमें अस्तित्व गुण है, इसलिये अस्तिस्वरूप हैं । कालद्रव्यके विना पांचों द्रव्य अस्तिस्वरूप भी हैं और काय स्वरूप भी हैं । इसलिये इन पांचोंको पंचास्तिकाय कहते हैं । छहो द्रव्योंमें एक पुद्गलद्रव्य रूपी है, शेष पांच द्रव्य अरूपी हैं ।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पण ग्रंथमें अजीवद्रव्यनिरूपण नामक दूसरा अधिकार समाप्त हुआ ।

तीसरा अधिकार ।

(पुद्गलद्रव्यनिरूपण ।)

पूर्वाचार्योंने पुद्गल द्रव्यका लक्षण "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त;पुद्गला;" अर्थात् जो स्पर्शरसगन्ध और वर्ण इन चार गुण संयुक्त होय, उसको पुद्गल कहते हैं, ऐसा कहा है । पुद्गल द्रव्य अनन्त गुणोंका समुदाय है । उनमें यह चार गुण ऐसे हैं, जो समस्त पुद्गलोंमें सदा पाये जाते हैं तथा पुद्गलके सिवाय और किसी भी द्रव्यमें नहीं पाये जाते; इस ही कारण ये चारों पुद्गल द्रव्यके आत्मभूतलक्षण हैं । पहले गुणोंको कथंचित् नित्यानित्य कह आये हैं, इसलिये ये स्पर्शादिक भी स्पर्शत्व आदिककी अपेक्षासे नित्य हैं और मृदुत्व आदिककी अपेक्षासे अनित्य हैं । भावार्थ;–यद्यपि समस्त पुद्गलोंमें स्पर्शरस गन्ध वर्ण ये चारो गुण नित्य पाये जाते हैं, तथापि ये चारों ही सदा एकसे नहीं बने रहते हैं; किन्तु

स्पर्शगुण कदाचित् मृदु (कोमल) कदाचित् कठिन, शीत, उष्ण, लघु, गुरू, स्निग्ध और रूक्षरूप परिणमन करता है। ये इस स्पर्शगुणकी अर्थपर्याय हैं। इस ही प्रकार तिक्त, कटुक, आम्ल, मधुर और कषाय (चिरपिरा, कडुआ, खट्टा, मीठा, और कसायला) ये रसके मूल भेद हैं, तथा दुर्गन्ध और सुगन्ध ये दो गन्धके भेद हैं, और नील, पीत, श्वेत, श्याम, और लाल ये वर्णगुणके पांच भेद हैं, इसप्रकार इन चार गुणोंके मूल भेद वीस और उत्तरभेद यथासंभव संख्यात, असंख्यात अनन्त इनके सिवाय हैं। पुद्गल द्रव्यकी अनन्तपर्याय हैं, उनमें दशपर्याय मुख्य हैं। उनके नाम और स्वरूप कहते हैं;—

शव्द, वन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये दश पुद्गल द्रव्यके मुख्य पर्याय हैं। शव्दके दो भेद हैं एक भाषात्मक, और दूसरा अभाषात्मक। भाषात्मकके भी दो भेद हैं एक अक्षरात्म और दूसरा अनक्षरात्मक। अक्षरात्मके संस्कृत, प्राकृत, देशभाषा आदि अनेक भेद हैं, और द्वींद्रियादिक जीवोंकी भाषा तथा अर्हन्तदेवकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक है। दिव्यध्वनि कंठतालु आदिक स्थानोंसे अक्षररूप होकर नहीं निकलती है, किन्तु सर्वांगसे ध्वनिस्वरूप उत्पन्न होकर पश्चात् अक्षररूप होती है, इसलिये अनक्षरात्मक है। इस भाषात्मक शव्दके समस्त ही भेद परके प्रयोगसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये प्रायोगिक हैं। अभाषात्मक शव्दके दो भेद हैं एक प्रायोगिक दूसरा स्वाभाविक। जो मेघादिकसे उत्पन्न होय, उसे स्वाभाविक कहते हैं, और जो दूसरेके प्रयोगसे होय उसको प्रायोगिक कहते हैं। प्रायोगिकके चार भेद हैं, १ तत, २ वितत, ३ घन, और ४ शौषिर। चर्मके विस्तृत करनेसे मढ़े हुए ढोल, नगाड़ा, मृदंगादिकसे उत्पन्न हुए शव्दको तत कहते हैं, सितार तमूरा आदिक तारके वाजोंसे उत्पन्न हुए शव्दको वितत कहते हैं, ताल, घंटा आदिकसे उत्पन्न हुए शव्दको घन कहते हैं, और वांसुरी शंखादिक फूंकसे वजनेवाले वाजोंसे उत्पन्न हुए शव्दको शौषिर कहते हैं। कितने ही मतावलम्बी शव्दको अमूर्त्त अर्थात् आकाशका गुण मानते हैं, सो ठीक नहीं है। जो पदार्थ मूर्त्तमान् इन्द्रियसे ग्रहण होता है, वह अमूर्त नहीं किन्तु मूर्त्त ही है। क्योंकि इन्द्रियोंका विषय अमूर्त्त पदार्थ नहीं है। इसलिये श्रोत्रइन्द्रियका विषय होनेसे शव्द मूर्त्त है। (शंका) जो शव्द मूर्त्त है, तो दूसरे घटपटादिक पदार्थोंकी तरह वार वार उसका ग्रहण क्यों नहीं होता? (समाधान) जैसे विजलीका एकवार नेत्र इन्द्रियसे ग्रहण होकर चारोंतरफ फैल जानेसे वार वार उसका ग्रहण नहीं होता, इस ही प्रकार शव्दका भी श्रोत्रइन्द्रियद्वारा एकवार ग्रहण होकर चारोंतरफ फैल जानेसे वार वार उसका ग्रहण नहीं होता। (शंका) जो शव्द मूर्त्त है, तो नेत्रादिक इन्द्रियोंसे भी उसका ग्रहण क्यों नहीं होता? (समाधान) प्रत्येक इन्द्रियका विषय नियमित होनेसे, जैसे रसादिकका ग्रहण घ्राणादिक इन्द्रियोंसे नहीं होता, उस ही प्रकार श्रोत्र इन्द्रियके विषयभूत शव्दका भी नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं होता है। अथवा जो शव्द अमूर्त्त होता, तो मूर्त्तिमान् पवनकी प्रेरणासे श्रोताके कानोंतक नहीं पहुंचता तथा मूर्त्तिमान् चुने पत्थरकी दीवारोंसे नहीं रुकता।

बन्धके भी दो भेद हैं, एक स्वाभाविक और दूसरा प्रायोगिक । स्वाभाविक (पुरुष प्रयोग अनपेक्षित) बन्ध दो प्रकार है एक सादि और दूसरा अनादि । स्निग्धरूक्ष गुणके निमित्तसे बिजली मेघ इन्द्रधनुष आदिक स्वाभाविक सादिबन्ध हैं । अनादिस्वाभाविकबन्ध धर्म अधर्म और आकाश द्रव्योंमें एक एकके तीन तीन भेद होनेसे नौ प्रकारका है, १ धर्मास्तिकाय बन्ध, २ धर्मास्तिकाय देशबन्ध, ३ धर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ४ अधर्मास्तिकाय बन्ध, ५ अधर्मास्तिकाय देशबन्ध, ६ अधर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ७ आकाशास्तिकायबन्ध, ८ आकाशास्तिकाय देशबन्ध, और ९ आकाशास्तिकाय प्रदेशबन्ध । जहां सम्पूर्ण धर्मास्तिकायकी विवक्षा है, वहां धर्मास्तिकायबन्ध कहते हैं । आधेको देश और चौथाईको प्रदेश कहते हैं । इस ही प्रकार अधर्म और आकाशमें समझना चाहिये । कालाणु भी समस्त एक दूसरेसे संयोगरूप हो रहे हैं और इस संयोगका कभी वियोग नहीं होता, सो यह भी अनादि संयोगकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है । एक जीवके प्रदेशोंके संकोचविस्तार स्वभाव होने पर भी परस्पर वियोग न होनेसे अनादिबन्ध है । नाना जीवोंके भी सामान्य अपेक्षासे दूसरे द्रव्योंके साथ अनादिबन्ध है । पुद्गलद्रव्यमें भी महास्कन्धादिके सामान्यकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है । इस प्रकार यद्यपि समस्त द्रव्योंमें बन्ध है, तथापि यहां प्रकरणके वशसे पुद्गलका बन्ध ग्रहण करना चाहिये । जो पुरुषके प्रयोगसे होय, उसको प्रायोगिक बन्ध कहते हैं । वह प्रायोगिक बन्ध दो प्रकारका है एक पुद्गलविषयिक दूसरा जीवपुद्गलविषयिक । पुद्गलविषयिक लाक्षाकाष्ठादिक हैं, और जीवपुद्गलविषयिकके दो भेद हैं एक कर्मबन्ध और दूसरा नोकर्मबन्ध । भावार्थ;—पुद्गलके दो भेद हैं, एक अणु और दूसरा स्कन्ध । स्कन्धके यद्यपि अनन्त भेद हैं तथापि संक्षपसे बावीस भेद हैं, और एक भेद अणुका इस प्रकार पुद्गलके सब मिलकर तेवीस भेद हैं । इनहीको तेवीस वर्गणा कहते हैं । यद्यपि ये समस्त वर्गणा पुद्गलकी ही है, तथापि इनमें परमाणुओंकी संख्या हीनाधिक होनेसे भिन्न भिन्न कार्योंकी उत्पादक हैं । इन तेवीस वर्गणाओंमेंसे अठारह वर्गणाओंका जीवसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, और पांच वर्गणाओंको जीव ग्रहण करते हैं । उन पांच वर्गणाओंके नाम इस प्रकार हैं; १ आहारवर्गणा, २ तैजसवर्गणा, ३ भाषावर्गणा, ४ मनोवर्गणा और ५ कार्माणवर्गणा । आहारवर्गणासे औदारिक (मनुष्य और तिर्यंचोंका शरीर), वैक्रियिक (देव और नारकियोंका शरीर) और आहारक (छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके शंका निवारणार्थ केवलीके निकट जानेवाला सूक्ष्म शरीर) ये तीन शरीर और श्वासोछ्वास बनते हैं; तैजस वर्गणासे तैजसशरीर (मृतक और जीवित शरीरमें जो कान्तिका भेद है, वह तैजसशरीरकृत है । मृत्यु होनेपर तैजसशरीर जीवके साथ चला जाता है) बनता है, भाषावर्गणासे शब्द बनते हैं, मनोवर्गणासे द्रव्यमन बनता है जिसके द्वारा यह जीव हित अहितका विचार करता है, और कार्माणवर्गणासे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म (इनका विशेष स्वरूप आगे लिखा जायगा) बनते हैं । जिनके निमित्तसे यह जीव चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख पाता है और जिनका क्षय होनेसे यह

जीव मोक्षपदको प्राप्त होता है। इन ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मोंके पिंडको ही कार्माणशरीर कहते हैं। इस प्रकार इस जीवके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तैजस और कार्माण ये पांच शरीर हैं। इनमेंसे कार्माणशरीरको कर्म और शेष चार शरीरोंको नोकर्म कहते हैं। जीव और कर्मके वन्धको कर्मवन्ध कहते हैं तथा जीव और नोकर्मके वन्धको नोकर्मवन्ध कहते हैं। अथवा प्रायोगिकवन्धके पांच भेद हैं। १ आलपन, २ आलेपन, ३ संश्लेश, ४ शरीर, और ५ शरीरी (जीव)। रथ गाड़ी आदिकको लोहरस्सी आदिकसें खेंचकर वांधनेको आलपनवन्ध कहते हैं। दीवार आदिकको मट्टी, गोवर, चूना आदिकसे लीपनेको आलेपन वन्ध कहते हैं। लाखकाष्टादिकके वन्धको संश्लेषवन्ध कहते हैं। शरीर वन्धके पांच भेद हैं, १ औदारिक, २ वैक्रियिक, ३ आहारक, ४ तैजस, और ५ कार्माण। औदारिकशरीरवन्धके चार भेद है, १ औदारिक शरीर नोकर्मके प्रदेशोंके औदारिक शरीर नोकर्मके प्रदेशोंसे परस्पर प्रवेशात्मक वन्धको औदारिकशरीरवन्ध कहते हैं। २ औदारिक और तैजस इन दोनों शरीरोंके प्रदेशोंके परस्पर प्रवेशको औदारिकतैजसवन्ध कहते हैं। ३ औदारिक और कार्माणशरीरोंके प्रदेशोंके परस्पर वन्धको औदारिककार्माणशरीरवन्ध कहते हैं। ४ औदारिक, तैजस और कार्माण इन तीनों शरीरोंके प्रदेशोंके परस्पर वन्धको औदारिकतैजसकार्माणशरीरवन्ध कहते हैं। ५ इस ही प्रकार वैक्रियिकवैक्रियिक, वैक्रियिकतैजस, वैक्रियिककार्माण और वैक्रियिकतैजसकार्माण ये वैक्रियिकके चार भेद हैं। तथा आहारकआहारक, आहारकतैजस, आहारककार्माण और आहारकतैजसकार्माण ये चार भेद आहारकके हैं। तैजस और तैजसकार्माण ये दो भेद तैजसके हैं। तथा कार्माणकार्माण यह एक भेद कार्माणका है। इस प्रकार शरीरवन्धके पन्द्रह भेद हैं। शरीरी (जीव) वन्धके दो भेद हैं, एक अनादि दूसरा सादि। वहुतसे परमाणु अनादिकालसे आत्मासे वन्धरूप हो रहे है, उसको अनादिवन्ध कहते हैं और वहुतसे परमाणुओंका पीछेसे आत्माका संवन्ध हुआ है उसको सादिवन्ध कहते हैं। अथवा शरीरवन्धके जो पन्द्रह भेद कहे हैं, उनके साथ आत्माका वन्ध है इसलिये जीववन्धके भी पन्द्रह भेद हैं। (शंका) कर्म और नोकर्ममें क्या भेद है ? (समाधान) जो आत्माके गुणोंको घातता है अथवा गत्यादिक रूप आत्माको पराधीन करता है उसको कर्म कहते हैं, और नोकर्म इससे विपरीत न तो आत्माके गुणको घातता है और न आत्माको पराधीन करता है इसलिये नोकर्म है। अथवा कर्म शरीरका सहकारी है। इसलिये ईषत् कर्म अर्थात् नोकर्म है।

सूक्ष्मपना दो प्रकार है एक आत्यन्तिक और दूसरा आपेक्षिक। परमाणुमें आत्यंतिकसूक्ष्मपना है और नारियल, आम, वेर आदिकमें आपेक्षिकसूक्ष्मपना है। तथा इस ही प्रकारसे स्थूलपनेके भी दो भेद हैं। जगद्व्यापी महास्कन्धमें आत्यन्तिकस्थूलपना है और वेर, आम, नारियल, आदिकमें आपेक्षिकस्थूलपना है। संस्थान आकारको कहते हैं, सो दो प्रकार है एक इत्थंलक्षण और दूसरा अनित्थंलक्षण। गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदिक इत्थंलक्षण हैं। जहां "यह आकार

ऐसा है" इस प्रकार निरूपण न हो सकै, ऐसे जो मेघादिकके अनेक आकार हैं उनको अनित्थंलक्षण कहते हैं। भेद छह प्रकारका है, १ उत्कर, २ चूर्ण, ३ खंड, ४ चूर्णिका, ५ प्रतर और ६ अणुचटन। काष्ठादिके करोंतादिकसे किये हुए टुकड़ोंको उत्कर कहते हैं, गेंहूं, जौ आदिकके सत्तू आटे आदिकको चूर्ण कहते हैं, घटके कपालादिकको खंड कहते हैं, उड़द मूंग आदिककी दालको चूर्णिका कहते हैं, मेघपटलादिकको प्रतर कहते हैं और गरम लोहेको हथौड़े आदिकसे कूटते समय जो फुलिंगे निकलते हैं, उनको अणुचटन कहते हैं। दृष्टिको रोकनेवाले अंधकारको तम कहते हैं, जिसको दूरकरता हुआ प्रदीप प्रकाश करता है। प्रकाशको आवरणकरने (ढकने) वाले शरीरादिकके निमित्तसे छाया होती है। उस छायाके दो भेद हैं, एक तद्वर्णादिविकारवती और दूसरी प्रतिबिंबमात्रग्राहिका। दर्पणादिक उज्वल द्रव्यमें मुखादिकके वर्णादिकरूप परिणत छायाको तद्वर्णादिविकारवती कहते हैं, और जिसमें वर्णादिक परिणति न होकर केवल प्रतिबिम्बमात्र होय, उसे प्रतिबिंबमात्रग्राहिका कहते हैं। उष्ण प्रकाशवाली सूर्यकी धूपको आतप कहते हैं। चंद्रमा मणि खद्योतादिकके प्रकाशको उद्योत कहते हैं।

पहले पुद्गलको क्रियावान् कह आये हैं। उस क्रियाके दश भेद हैं, भावार्थः—१ बाणादिकके प्रयोगगति है, २ एरंडादिकके बन्धाभावगति है, ३ मृदंगादिकके शब्दके छिन्नरूप पुद्गलोंकी गतिको छेदगति कहते हैं, ४ पाषाणादिकके गुरुगति है, ५ अर्कतूलादिकके लघुगति है, ६ मेघादिकके संचारगति है, ७ मेघादिक तथा अश्वादिककी संयोगनिमित्तक संयोगगति है, ८ गेंदादिकके अभिघातगति है, ९ नौका आदिकके अवगाहगति है, १० पवन, अग्नि, परमाणु, सिद्ध, ज्योतिष्क आदिकके स्वभावगति है। अर्थात् केवल पवनके तिर्यग्गति है और धोंकनी आदिकके निमित्तसे अनियतगति है। अग्निके ऊर्द्ध्वगति है और कारणके वशसे अन्य दिशाओंमें भी गति है। परमाणुके अनियतगति है सिद्धक्षेत्रको जाते हुए सिद्धोंके केवल उर्द्ध्व गति है, मध्यलोकमें ज्योतिष्कोंके नित्यभ्रमणगति है।

पूर्वकथित पुद्गलके दो भेद हैं एक अणु और दूसरा स्कन्ध। प्रदेश मात्रमें होनेवाले स्पर्शादिक गुणोंसे निरन्तर परिणमैं वे अणु हैं। इन अणुओंको परमाणु भी कहते हैं। प्रत्येक परमाणु षट्कोण आकारवाला, एक प्रदेशावगाही, स्पर्शादिक गुणोंका समुदायरूप, अखंडद्रव्य है। अत्यन्त, सूक्ष्म होनेसे आत्मादि, आत्ममध्य और आत्मान्त है। इन्द्रियोंसे अगोचर और अविभागी है। स्थूलपनेसे ग्रहण निक्षेपणादिकव्यापारको जो प्राप्त हो, उसे स्कन्ध कहते हैं। यद्यपि द्व्यणुक आदि स्कन्धोंमें ग्रहणनिक्षेपणव्यापार नहीं हो सकता है, तथापि रूढ़िके वशसे जैसे गमनक्रियारहित सोती हुई बैठी हुई गायको गो शब्दसे कहते हैं, उस ही प्रकार द्व्यणुक आदिक स्कन्ध ग्रहणनिक्षेपणादिक व्यापारवान् न होनेपर भी स्कन्ध शब्दसे कहे जाते हैं। शब्द बन्धादिक स्कन्धोंके ही होते हैं, परमाणुके नहीं होते।

पुद्गल शब्दकी निरुक्ति पूर्वाचार्योंने इस प्रकार की है, पूरयन्ति गलयन्तीति पुद्गलाः अर्थात् जो पूरैं और गलैं उनको पुद्गल कहते हैं। यह अर्थ पुद्गलके अणु और स्कन्ध इन दोनों भेदोंमें व्यापक है। अर्थात् परमाणुमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णरूप गुणोंके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी हीनाधिकता होनेसे पूरण गलन है, अथवा परमाणु स्कन्धोंमें मिलते हैं तथा स्कन्धोंसे जुदे होते हैं, इसलिये वे पूरण गलन धर्म संयुक्त हैं। और स्कन्ध अनेक पुद्गलोंका एक समूह है, इसलिये पुद्गलोंसे अभिन्न होनेसे उनमें पुद्गल शब्दका व्यवहार है।

कोई महाशय परमाणुको कारण ही मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि स्कन्धके भेद होनेसे परमाणुकी उत्पत्ति होती है, इसलिये वह कथंचित् कार्य भी है। तथा कोई २ महाशय परमाणुको नित्य मानते है, सो भी उचित नहीं है। क्योंकि परमाणुमें स्निग्धादिक गुणोंका उत्पाद और व्यय होता है, इसलिये परमाणु कथंचित् अनित्य भी हैं। तथा व्यणुक आदिककी तरह संघातरूप कार्यके अभावसे परमाणु कारणस्वरूप भी है और द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे परमाणुकी न कभी उत्पत्ति होती है और न कभी नाश होता है इसलिये कथंचित् नित्य भी है। निरवयव होनेसे परमाणुमें एकरस, एकवर्ण और एकगन्ध है। जो सावयव होते हैं, उनके ही अनेक रस आदिक होते हैं। जैसे आम्रादिकके अनेक रस मयूरादिकके अनेक वर्ण और अनुलेपादिकके अनेक गन्ध हैं। एकप्रदेशी परमाणुके अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। अर्थात् शीत और उष्ण इन दोमेंसे एक तथा स्निग्ध और रूक्ष इन दोमेंसे एक, इस प्रकार दो अविरुद्ध स्पर्श होते हैं। एकप्रदशी परमाणुके परस्परविरुद्ध शीत और उष्ण तथा स्निग्ध और रूक्ष दोनों युगपत् नहीं हो सकते, दोनोंमेंसे एक एक ही होता है। गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्श परमाणुओंमें नहीं, किन्तु स्कन्धोंमें होते हैं। यद्यपि परमाणु इन्द्रियोंके गोचर (विषय) नहीं हैं, तथापि घट, पट, शरीरादिक कार्यके देखनेसे कारणरूप परमाणुओंके अस्तित्वका अनुमान होता है। क्योंकि कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। परमाणु कारणादि अनेक विकल्परूप अनेकान्तात्मक है। भावार्थः—परमाणु व्यणुक आदिक स्कन्धोंकी उत्पत्तिका निमित्त है इसलिये कथंचित् कारण है, स्कन्धोंके भेद (खंड) होनेसे उत्पन्न होता है, इसलिये कथंचित् कार्य है, स्कन्धोंका विभाग होते २ परमाणु होता है, और परमाणुका पुनः विभाग नहीं होता इसलिये कथंचित् अन्त्य है, स्पर्शादिक गुणोंका समुदाय है, सो ही परमाणु है इसलिये एक परमाणु स्पर्शादिक अनेक भेदस्वरूप है इसलिये कथंचित् अन्त्य नहीं है, सूक्ष्मपरिणामरूप होनेसे कथंचित् सूक्ष्म है, स्थूल स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण होनेस कथंचित स्थूल है, द्रव्यपनेका कभी नाश नहीं होता इसलिये कथंचित् नित्य है, स्निग्धादिकका परिणमन होता रहता है इसलिये कथंचित् अनित्य है, एकप्रदेशपर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् एक रस गंध वर्ण और द्विस्पर्श रूप है, अनेकप्रदेशरूप स्कन्ध परिणामशक्ति सहित होनेसे कथंचित् अनेक रसादि रूप है, कार्य लिंगसे अनुमीयमान होनेकी अपेक्षासे कथंचित्

कार्यलिङ्ग है और प्रत्यक्षज्ञानविषयत्वपर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् कार्यलिंग नहीं है। इस प्रकार परमाणु अनेकधर्मस्वरूप है। प्राचीन सिद्धान्तकारोंने भी कहा है;—

कारणमेवतदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एक रसगन्धवर्णो द्विस्पर्शी कार्य लिङ्गश्च ॥

अब आगे स्कन्धका वर्णन करते हैं;—

बन्धपरिणामको प्राप्त हुए परमाणुओंको स्कन्ध कहते हैं। स्कन्धके यद्यपि अनन्त भेद हैं, तथापि संक्षेपसे तीन भेद हैं। १ स्कन्ध, २ स्कन्धदेश, और ३ स्कन्धप्रदेश। भावार्थ;—अनन्तानन्त परमाणुओंका महास्कन्ध उत्कृष्ट स्कन्ध है। महास्कन्धमें जितने परमाणु हैं, उसके आधेमें एक जोड़नेसे जो संख्या हो उसको जघन्यस्कन्ध कहते हैं, बीचके स्कन्धोंको मध्यमस्कन्ध कहते हैं, महास्कन्धमें जितने परमाणु हैं, उनसे आधे परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्टस्कन्धदेश कहते हैं, महास्कन्धके परमाणुओंकी संख्यासे चौथाईमें एक मिलानेसे जितनी संख्या हो, उतने परमाणुओंके स्कन्धको जघन्यस्कन्धदेश कहते हैं, बीचके स्कन्धोंको मध्यमस्कन्धदेश कहते हैं। महास्कन्धके परमाणुओंकी संख्यासे चौथाई परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्टस्कन्धप्रदेश कहते हैं, दो परमाणुओंके स्कन्धको जघन्यस्कन्धप्रदेश कहते हैं और बीचके स्कन्धको मध्यमस्कन्धप्रदेश कहते हैं। इस प्रकार स्कन्धके तीन भेद और एक परमाणु, सब मिलकर पुद्गलके चार भेद हुए। अथवा अन्य प्रकारसे पुद्गलद्रव्यके छह भेद कहे हैं। १ वादरवादर, २ बादर, ३ वादरसूक्ष्म, ४ सूक्ष्मवादर, ५ सूक्ष्म और ६ सूक्ष्मसूक्ष्म। जो पुद्गलपिंड दो खंड करनेपर अपने आप फिर नहीं मिलैं, ऐसे काष्टपाषाणादिकको वादरवादर कहते हैं। जो पुद्गलपिंड खंड खंड किये हुए अपने आप मिल जांय, ऐसे दुग्ध घृत तैलादिक पुद्गलोंको वादर कहते हैं। जो पुद्गलपिंड स्थूलहोनेपर भी छेद भेद और ग्रहण करनेमें नहीं आवें, ऐसे धूप छाया चांदनी आदिक पुद्गलोंको वादरसूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म होनेपर भी स्थूलवत् प्रतिभासमान स्पर्शन-रसन-घ्राण और श्रोत्रइन्द्रियग्राह्य स्पर्श रस गन्ध और शब्द रूप पुद्गलोंको सूक्ष्मवादर कहते हैं। इन्द्रियोंके अगोचर कर्मवर्गणादिकस्कन्धोंको सूक्ष्म कहते हैं। परमाणुको सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं। कोई २ आचार्योंने ये छह भेद स्कन्धोंके माने हैं। वे कर्मवर्गणासे नीचे द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्तके स्कन्धोंको सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं और परमाणुको भिन्नभेदमें ग्रहण करते हैं। उनके मतानुसार पुद्गलके सात भेद हैं। अथवा स्कन्धके पृथ्वी अप् तेज और वायु ये चार भेद हैं। इनमेंसे प्रत्येक भेद स्पर्श रस गन्ध और वर्ण इन चारों गुण संयुक्त है, तथा ये ही पृथ्वी आदिक ही शब्दादिकरूप परिणमैं हैं। कई महाशय पृथ्वी आदिक चारोंको भिन्न २ पदार्थ मानते हैं और पार्थिवादिक परमाणुओंको भिन्न २ जातिवाले मानते हैं, पृथ्वीके परमाणुओंको स्पर्श रस गन्ध और वर्ण चारों गुणवाले, जलके परमाणुओंको गन्ध विना तीन गुणवाले अग्निके

परमाणुओंको वर्ण और स्पर्श दो गुणवाले, और वायुके परमाणुओंको केवल स्पर्शगुण-वाले मानते हैं, सो ठीक नहीं है। क्योंकि पृथ्वी आदिकके परमाणुओंका जलादिक परमाणुरूप परिणमन दीखता है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, काष्ठादिक पृथ्वीरूप पुद्गल अग्निरूप होते दीखते हैं, स्वातिनक्षत्रमें सीपके मुखमें गिरी हुई जलकी बूंद मोती हो जाती है, ग्रहण किया हुआ आहार वात (पवन) पित्त (जठराग्नि) रूप होता है, मेघ जलरूप हो जाता है, जल बर्फ (पृथ्वी) रूप हो जाता है, दियासलाई (पृथ्वी) अग्निरूप हो जाती है। यदि कोई कहै कि, दियासलाईमें अग्निके परमाणु पहलेहीसे थे, सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि दियासलाईमें अग्निके लक्षण उष्ण स्पर्शका अभाव है। इत्यादि अनेक दोष आते हैं, इसलिये ये पृथ्वी आदिक भिन्नभिन्न द्रव्य नहीं हैं किन्तु एक पुद्गल द्रव्यके ही ये चारों पर्याय हैं। पृथ्वीमें चारों गुणोंकी मुख्यता है, जलमें गन्धकी गौणता है, अग्निमें गन्ध और रसकी गौणता है और वायुमें स्पर्शकी मुख्यता और शेष तीनकी गौणता है। ये चारों ही गुण परस्पर अविनाभावी हैं। जहां एक है वहां चारों हैं। ये स्कन्ध पुद्गलत्वकी अपेक्षासे यद्यपि अनादि हैं, तथापि उत्पत्तिकी अपेक्षासे आदिमान् हैं। अब आगे स्कन्धोंकी उत्पत्तिके कारणका निरूपण करते हैं;—

भेद (खंड होना) संघात (मिलना) और दोनोंसे (भेद संघातसे) स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है। भावार्थ;—दो परमाणुओंके मिलनेसे द्व्यणुकस्कन्ध होता है, द्व्यणुकस्कन्ध और एक परमाणुके मिलनेसे त्र्यणुकस्कन्ध होता है, दो द्व्यणुकस्कन्ध अथवा एक त्र्यणुकस्कन्ध और एक परमाणुसे चतुर-णुकस्कन्ध होता है। इस ही प्रकार संख्यात असंख्यात अनन्त परमाणुओंके स्कन्धोंकी संघातसे उत्पत्ति होती है तथा स्कन्धोंके भेदसे भी स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है। किन्तु द्व्यणुकस्कन्धोंके भेदसे स्क-न्धकी उत्पत्ति नहीं होती। कभी २ एक ही समयमें एक स्कन्धमेंसे किसी एक अंशका भेद होता है, और उस ही समयमें कोई दूसरे स्कन्ध वा परमाणुसे संघात होता है इसलिये एक ही समयमें भेदसंघात दोनोंके होनेसे वह स्कन्ध उभयजन्य कहा जाता है। परमाणुकी उत्पत्ति केवल भेदसे ही होती है। संघातसे परमाणुकी उत्पत्ति असंभव है। इसलिये परमाणुकी उत्पत्ति न तो संघातसे होती है और न भेद संघातसे होती है, केवल भेदसे ही होती है। अनन्तानंत परमाणुओंके समूह रूप स्कन्धोंमें कोई स्कन्ध चाक्षुष (नेत्रगोचर) होता है और कोई अचाक्षुष होता है। चाक्षुष स्थूल है और अचाक्षुष सूक्ष्म है। सूक्ष्म अचाक्षुष स्कन्धमेंसे किसी अंशका भेद होनेसे वह सूक्ष्म-स्कन्ध सूक्ष्म ही रहेगा, भेद होनेसे सूक्ष्मपरिणतस्कन्ध स्थूल नहीं हो सकता, किन्तु उस सूक्ष्म स्कन्धमेंसे किसी एक अंशका भेद होनेपर यदि दूसरे स्कन्धसे उस ही समय संघात भी हो जाय, तो वह सूक्ष्मपरिणतस्कन्ध चाक्षुष हो सकता है, केवल भेदसे चाक्षुष नहीं होता है। अब आगे बन्धका कारण कहते हैं;—

अनेक परमाणु अथवा स्कन्धोंके मिलकर परस्पर एकीभावको बन्ध कहते हैं, केवल संयोग

मात्रको बन्ध नहीं कहते हैं। जैसे कि एक घड़ेमें बहुतसे चने भरे हैं, सो यहां चनोंका परस्पर संयोग हैं बन्ध नहीं है। क्योंकि उनमें परस्पर एकीभाव नहीं है भिन्न भिन्न हैं। किन्तु एक चनेमें जो अनन्त परमाणुओंका समुदाय है सो बन्धरूप है। क्योंकि यहां एकीभाव (एकता) है। इस ही प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये। यह बन्ध स्निग्ध और रुक्ष गुणके निमित्तसे होता है। भावार्थः—पुद्गल द्रव्यके स्पर्शादिक चार गुणोंमेंसे स्पर्शगुणके आठ भेद हैं, उनमेंसे स्निग्ध और रुक्ष इन दो गुणोंके निमित्तसे बन्ध होता है। उसका खुलासा इस प्रकार है कि, प्रत्येक गुणमें हीनाधिकता होती है, उस हीनाधिकताका परिमाण उस गुणके अंशोंके (अविभागप्रतिच्छेदोंके) द्वारा किया जाता है। अविभागप्रतिच्छेद् गुणका अंश है और अंशअंशी कथंचित् अभिन्न हैं। इसलिये अविभागप्रति-च्छेद्को कथंचित् गुण भी कह सकते हैं। परमाणुओंमें सदाकाल अविभागप्रतिच्छेदोंकी हीनाधिकता होती रहती है, तथा स्निग्धगुण रुक्षरूप परिणमन हो जाता है और कदाचित् स्निग्धका रुक्षरूप भी परिणमन होता रहता है। जैसे जल, बकरीका दूध, गायका दूध, भैंसका दूध, और घृत इन पदार्थोंमें अधिक अधिक स्निग्धता पाई जाती है। तथा रज, वालू आदिकमें अधिक २ रुक्षता है। उस ही प्रकार परमाणुमें भी स्निग्धता और रुक्षताकी हीनाधिकता होती है। स्निग्ध गुणवाले परमाणु वा स्कंधका स्निग्धगुणवाले परमाणु व स्कन्धके साथ, तथा रुक्षका रुक्षके साथ और स्निग्धका रुक्षके साथ इसप्रकार समानजातीय तथा असमानजातीय दोनोंका परस्पर बन्ध होता है। जिन परमाणुओंमें स्निग्धका तथा रुक्षका एक गुण (अविभागप्रातिच्छेद) है, उनका किसी दूसरे स्कन्ध वा परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता और इस ही प्रकार जिन परमाणुओंमें गुणोंकी (अविभागप्रतिच्छेदोंकी) संख्या समान है, उनका भी परस्पर बन्ध नहीं होता है। किन्तु जिस परमाणुमें दो गुण अधिक हैं, उसका अपनेसे दो गुणहीनवालेसे बन्ध होता है। भावार्थः—दो गुण स्निग्धका, चारगुण स्निग्ध तथा चारगुण रुक्षवालेसे बन्ध होता है, एक दो तीन पांच आदि गुणवालेंसे बन्ध नहीं होता। तथा तीन गुणवालेका पांच गुणवालेसे बन्ध होता है, शेषसे नहीं होता है। इस ही प्रकार अन्य संख्यामें भी समझ लेना। तथा जैसे स्निग्धका कहा, उस ही प्रकार तीन गुणवाले रुक्षका पांच गुणवाले रुक्ष तथा स्निग्धके साथ बन्ध होता है, शेषके नहीं होता। इस ही प्रकार अन्यत्र भी लगा लेना। यहां इतना विशेष जानना कि, जो अधिक गुणवाला होता है, वह हीन गुणवालेको अपने परिणाम स्वरूप कर लेता है। भावार्थः—जैसे अधिक मधुर रसवाला गुण अपने ऊपर पड़ी हुई रजको अपने स्वरूप परणमा लेता है, वैसे ही सर्वत्र जानना। दो स्कन्धोंका जब परस्पर बन्ध होता है और अधिक गुणवला हीनगुणवालेको अपने स्वरूप परणमाता है, तब पहिली दोनों अवस्थाओंके त्यागपूर्वक तीसरी अवस्था प्रगट होती है, और दोनोंका एक स्कन्ध हो जाता है। अन्यथा अधिक गुणवाला पारिणामिक न होनेसे कृष्ण और श्वेत तन्तुकी तरह संयोग होनेपर भी भिन्न भिन्न ही रहते हैं।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें पुद्गलद्रव्यनिरूपण नामक तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

चौथा अधिकार ।

(धर्म और अधर्मद्रव्य निरूपण ।)

अनन्तानन्त आकाशके मध्यमें आकाशके उस भागको जिसमें जीवादिक पांच द्रव्य स्थित हैं, लोकाकाश कहते हैं । इन पांच द्रव्योंमेंसे पुद्गलद्रव्यका कथन समाप्त हो चुका, आकाश काल और जीवका कथन आगे किया जावेगा, धर्म और अधर्म द्रव्यका निरूपण इस अधिकारमें किया जाता है ।

संसारमें धर्म और अधर्म शब्दसे पुण्य और पाप समझे जाते हैं । परन्तु यहांपर वह अर्थ नहीं है । यहां धर्म और अधर्म शब्द द्रव्यवाचक हैं, गुणवाचक नहीं हैं । पुण्य और पाप आत्माके परिणाम विशेष हैं, अथवा " जो जीवोंको संसारके दुःखसे छुड़ाकर मोक्ष सुखमें धारण करता है, सो धर्म है और इससे विपरीत अधर्म है" यह अर्थ भी यहांपर नहीं समझ लेना चाहिये । क्योंकि ये भी जीवके परिणाम विशेष हैं । यहांपर धर्म और अधर्म शब्द दो अचेतन द्रव्योंके वाचक हैं । ये दोनों ही द्रव्य तिलमें तेलकी तरह समस्त लोकमें व्यापक हैं । धर्म द्रव्यका स्वरूप श्रीमत्कुन्दकुन्दस्वामीने इस प्रकार कहा है;—

गाथा ।

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादि य पदेसं ॥ १ ॥
अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहि परिणदं णिच्चं ।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ २ ॥
उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए ।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ३ ॥

अर्थात् धर्मास्तिकाय स्पर्श रस गन्ध वर्ण और शब्दसे रहित है, अतएव अमूर्त्त है, सकल लोकाकाशमें व्याप्त है, अखंड, विस्तृत और असंख्यात प्रदेशी है । षट्स्थानपतितवृद्धिहानि (इसका स्वरूप इस ही अधिकारके अन्तमें कहा जावेगा, वहांसे जानना) द्वारा अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेदोंकी हीनाधिकतासे उत्पादव्ययस्वरूप है । अपने स्वरूपसे च्युत न होनेसे नित्य है, गतिक्रिया–परिणत जीव और पुद्गलको उदासीन सहाय मात्र होनेसे कारणभूत है । आप किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है, इसलिये अकार्य है । जैसे जल स्वयं गमन न करता हुआ तथा दूसरोंको गतिरूप परिणमानेमें प्रेरक न होता हुआ, अपने आप गमनरूप परिणमते हुए मत्स्यादिक (मछलीवगैरह) जलचर जीवोंको उदासीन सहकारीकारण मात्र है, उस ही प्रकार धर्मद्रव्य भी स्वयं गमन नहीं करता हुआ तथा परको गतिरूप परिणमानेमें प्रेरक न होता हुआ स्वयमेव गतिरूप परिणमे जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारिकारण मात्र है । अर्थात् जीव और पुद्गलद्रव्य परगति–सहकारित्व–रूप धर्मद्रव्यका उपकार है ।

जिस प्रकार धर्मद्रव्य गतिसहकारी है, उस ही प्रकार अधर्मद्रव्य स्थितिसहकारी है। भावार्थ—जैसे पृथ्वी स्वयं पहलेहीसे स्थित रूप है, तथा परकी स्थितिमें प्रेरकरूप नहीं है। किन्तु स्वयं स्थितिरूप परिणमते हुए अश्वादिकों (घोड़े वगैरह) को उदासीन अविनाभूत सहकारीकारण मात्र है, उस ही प्रकार अधर्मद्रव्य भी स्वयं पहलेहीसे स्थितिरूप परके स्थितिपरिणाममें प्रेरक न होता हुआ स्वयमेव स्थितिरूप परिणमें जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारी कारण मात्र है। अर्थात् जीव और पुद्गल द्रव्य पर-स्थितिसहकारित्वरूप अधर्मद्रव्यका उपकार है।

जिस प्रकार गतिपरिणामयुक्त पवन ध्वजाके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता है, उस प्रकार धर्म द्रव्यमें गति-हेतुत्व नहीं है। क्योंकि धर्मद्रव्य निष्क्रिय होनेसे कदापि गतिरूप नहीं परिणमता है, और जो स्वयं गतिरहित है, वह दूसरेके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता, किन्तु जीव मछलियोंको जलकी तरह पुद्गलके गमनमें उदासीन सहकारीकारण मात्र है। अथवा जैसे गतिपूर्वक स्थिति-परिणत तुरंग असवारके स्थिति परिणामका हेतु कर्त्ता है, उस प्रकार अधर्म द्रव्य नहीं है। क्योंकि अधर्म द्रव्य निष्क्रिय होनेसे कदापि गतिपूर्वक स्थितिरूप नहीं परिणमता है, और जो स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप नहीं है, वह दूसरेकी गतिपूर्वक स्थितिका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता। किन्तु जीव घोड़ेको पृथ्वीकी तरह पुद्गलकी गतिपूर्वक स्थितिमें उदासीन सहकारी कारण मात्र है। यदि धर्म और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें हेतुकर्त्ता न होते, तो जिनके गति है, उनके गति ही रहती स्थिति नहीं होती और जिनके स्थिति है उनके स्थिति ही रहती गति नहीं होती। किन्तु एक ही पदार्थके गति और स्थिति दोनों दीखती हैं, इससे सिद्ध होता है कि, धर्म और अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी गतिस्थितिमें हेतुकर्त्ता नहीं हैं, किन्तु अपने स्वभावसे ही गतिस्थितिरूप परिणमें हुए जीव पुद्गलोंको उदासीन सहकारि-कारण मात्र है।

(शंका)—धर्म और अधर्म द्रव्यके सद्भावमें क्या प्रमाण है?

(समाधान)—आगम और अनुमानप्रमाणसे धर्म और अधर्म द्रव्यका सद्भाव सिद्ध होता है। "**अजीवकायाधर्माधर्माकाशपुद्गलाः**" यह धर्म और अधर्मद्रव्यके सद्भावमें आगमप्रमाण है और अनुमानप्रमाणसे उनकी सिद्धि इस प्रकारसे होती है:—अनुमानका लक्षण पहले कह आए हैं कि, साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं। जो पदार्थ सिद्ध करना है, उसको साध्य कहते हैं, और साध्यके विना जिसका सद्भाव नहीं हो उसको साधन कहते हैं। साध्य साधनके इस अविनाभावसंबंधको व्याप्ति कहते हैं। संसारमें कारणके विना कोई भी कार्य नहीं होता है, इसलिये कार्यकी कारणके साथ व्याप्ति है अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान होता है। कारणके दो भेद हैं, एक उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण। जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमता है, उसको उपादान कारण कहते हैं। जैसे घटका उपादान कारण मृ-

त्तिका (मिट्टी) है। और जो पदार्थ स्वयं तो कार्यरूप नहीं परिणमता है, किन्तु उपादन कारणके कार्यरूप परिणमनमें सहकारी होता है, उसको निमित्तकारण कहते हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिमें दण्डचक्रकुंभकारादि। निमित्त कारणके दो भेद हैं, एक प्रेरकनिमित्तकारण और दूसरा उदासीन-निमित्तकारण। प्रेरकनिमित्तकारण उसको कहते हैं, जो प्रेरणापूर्वक परको परिणमावै। जैसे कुंभकारके चक्रके भ्रमणरूप कार्यमें दंड और कुंभकार प्रेरकनिमित्तकारण हैं। जो परको प्रेरणा तो करता नहीं है और उसके परिणमनमें उदासीनतासे सहकारी होता है, उसको उदासीन-निमित्तकारण कहते हैं। जैसे चक्रके भ्रमणरूप कार्यमें कीली (जिसके ऊपर रक्खा हुआ चक्र भ्रमण करता है) जो चक्र भ्रमण करै, तो किली सहकारिणी है, स्वयं दण्डकी तरह चक्रको नहीं घुमाती है। किन्तु विना कीलीके चक्र नहीं घूम सकता। इसहीलिये कीली चक्रके भ्रमणमें कारण है। संसारमें एक कार्यकी सिद्धि एक कारणसे नहीं होती है, किन्तु कारणकलापकी (समूहकी) एकत्रतासे (सिद्धि) होती है। जैसे दीपकरूप कार्यकी उत्पत्तिमें तेल, वत्ती, दियास-लाई आदि अनेक कारण हैं। ये तेल वत्ती आदिक जुदे २ दीपकरूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ नहीं हैं, किन्तु इन सब कारणोंकी एकत्रता ही दीपकरूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ है। भावार्थ,— कारणके दो भेद हैं, एक असमर्थ कारण और दूसरा समर्थ कारण। कार्यकी उत्पत्तिमें सहकारी अनेक पदार्थोंमेंसे जुदा २ प्रत्येक पदार्थ असमर्थ कारण है। जैसे दीपककी उत्पत्तिमें तेल वत्ती आदिक जुदे २ असमर्थ कारण हैं। प्रतिबन्धक (बाधक) का अभाव होनेपर सहकारी समस्त सामग्रीकी एकत्रताको समर्थ कारण कहते हैं। जैसे दीपककी उत्पतिमें तेल वत्ती आदिक समस्त सामग्रीकी एकत्रता और प्रतिबन्धक पवनका अभाव समर्थ कारण है। तेल वत्ती आदिक समस्त सहकारी सामग्रीका सद्भाव होनेपर भी दीपकके प्रतिबन्धक पवनका जबतक निरोध नहीं होगा, तबतक दीपकरूप कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिये कार्यकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धके अभावको भी कारणता है। यहांपर कहनेका अभिप्राय यह है कि, किसी एक कार्यकी उत्पत्ति किसी एक कारणसे ही नहीं होती है, किन्तु एक कार्यकी उत्पत्तिमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता होती है। गति और गतिपूर्वक स्थिति ये दो कार्य जीव और पुद्गल इन दो ही द्रव्योंमें होते हैं अन्यमें नहीं होते हैं। जीव और पुद्गलके गति और गतिपूर्वक स्थितिरूप कार्य अनेक कारणजन्य हैं। उनमें जीव और पु-द्गल तो उपादानकारण हैं और धर्म और अधर्मद्रव्य निमित्तकारण हैं। बस जीव और पुद्गलके गति और गतिपूर्वक स्थितिरूप कार्यसे धर्म और अधर्मद्रव्यरूप निमित्तकारणका अनुमान होता है। यद्यपि मछली आदिककी गतिमें जलादिक और अश्वादिककी गतिपूर्वक स्थितिमें पृथ्वी आ-दिक निमित्तकारण हैं, तथापि पक्षियोंके गगनगमनादिक कार्योंमें निमित्तकारणका अभाव होनेसे धर्म और अधर्म द्रव्यका सद्भाव सिद्ध होता है। अथवा यद्यपि जलादि पदार्थ मछली आदिकके गमनमें निमित्त कारण हैं, किन्तु धर्म और अधर्मद्रव्य युगपत् समस्त पदार्थोंकी गतिस्थितिमें

साधारण कारण हैं। ये धर्म और अधर्मद्रव्य लोकव्यापी हैं, इसलिये ये ही साधारण कारण हो सकते हैं। अन्य पदार्थ लोकव्यापी न होनेसे साधारण कारण नहीं हो सकते।

(शंका)—आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है। इसलिये गति और स्थितिमें आकाशद्रव्य साधारण निमित्तकारण होनेसे धर्म और अधर्मद्रव्यकी आवश्यकता नहीं है।

(समाधान)—यदि आकाशको गति स्थितिमें कारण मानोगे, तो आकाशका लोकके बाहर भी सद्भाव होनेसे जीव पुद्गलका लोकके बाहर भी गमन हो जायगा, और ऐसा होने पर लोक और अलोकका विभाग सिद्ध नहीं होगा। अथवा धर्म और अधर्मका सद्भाव सिद्ध करनेमें दूसरी अनुमिति इस प्रकार है कि:—धर्म और अधर्म द्रव्य हैं (प्रतिज्ञा), क्योंकि लोक और अलोकके विभागकी अन्यथा अनुपपत्ति है अर्थात् लोक अलोकका विभाग नहीं हो सकता (साधन) अर्थात् हेतु) जीवादिक समस्त पदार्थोंकी एकत्रवृत्तिरूप लोक है और शुद्ध एक आकाशद्रव्यको अलोक कहते हैं। जीव और पुद्गल स्वभावसे ही गति तथा गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमे हैं। इन गति तथा गतिपूर्वक स्थितिरूप स्वयंपरिणतजीव और पुद्गलोंको बहिरंगकारणभूत धर्म और अधर्मद्रव्य नहीं होय, तो उनके गति और गतिपूर्वक स्थिति परिणामोंको निरर्गलताके कारण अलोकाकाशमें भी होनेसे कौन रोक सकता है? और ऐसा होनेपर लोक और अलोकका विभाग सिद्ध नहीं होगा। परन्तु जीव और पुद्गलके गति तथा गतिपूर्वक स्थितिपरिणामको बाह्यकारणभूत धर्म और अधर्मद्रव्यका सद्भाव माननेसे लोक और अलोकका विभाग अच्छी तरह सिद्ध होता है।

(शंका)—लोक और अलोकका विभागरूप हेतु असिद्ध है और असिद्ध हेतु साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है।

(समाधान)—लोक और अलोकका विभाग दूसरे अनुमानसे सिद्ध है, इसलिये हेतु असिद्ध नहीं है। वह दूसरा अनुमान इस प्रकार है कि लोक और अलोकका विभाग है (प्रतिज्ञा), क्योंकि लोक अन्तसहित है (हेतु)।

(शंका)—लोकके सान्ततारूप हेतु भी असिद्ध है।

(समाधान)—ऐसा नहीं है। लोककी सान्तता अनुमानान्तरसे सिद्ध है। भावार्थ—लोक अन्तसहित है (प्रतिज्ञा) क्योंकि महलादिककी तरह रचनाविशिष्ट है और लोकके रचना विशिष्टपणा प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध है। इस प्रकार अनुमान परम्परासे धर्म और अधर्म द्रव्यका सद्भाव सिद्ध होता है। अब आगे षट्स्थानपतितवृद्धिहानिका स्वरूप लिखा जाता है।

षट्स्थानपतितहानिवृद्धिका सविस्तर स्वरूप तो श्री गोमठसारजीमें कहा है, किन्तु यहां पर भी पाठकोंके सुखबोधार्थ संक्षेपसे लिखा जाता है। किसी शक्तिके (गुणके) अविभागी अंशको अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं और इन अविभागप्रतिच्छेदोंके कम होनेको हानि और बढ़नेको वृद्धि कहते हैं। यह हानि और वृद्धि छह २ प्रकारसे होती है—१ अनंतभागवृद्धि, २ असंख्यातभाग-

वृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४ संख्यातगुणवृद्धि, ५ असंख्यातगुणवृद्धि, और ६ अनंतगुणवृद्धि । तथा इसही प्रकार १ अनन्तभागहानि, २ असंख्यातभागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४ संख्यातगुणहानि, ५ असंख्यातगुणहानि, और ६ अनंतगुणहानि । इसही कारण इसका नाम षट्स्थानपतितहानिवृद्धि है । इस षट्स्थानपतितहानिवृद्धिमें अनंतका प्रमाण समस्त जीवराशिके समान है, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक (लोकाकाशके प्रदेशोंसे असंख्यातगुणित) के समान और संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातके समान है । किसी विवक्षित गुणके किसी विवक्षितसमयमें जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनमें अनंतका भाग देनेसे जो लब्धि आवै, उसको अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें मिलानेसे अनंतभागवृद्धिरूप स्थान होता है । जैसे अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण २५६ हो, और अनंतका प्रमाण १६ हो, तो अनंत १६ का भाग अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाण २५६ में देनेसे लब्ध १६ को २५६ में मिलानेसे २७२ अनंतभागवृद्धिका स्थान होता है । इसही प्रकार असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागवृद्धिका स्वरूप जानना चाहिये । अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणको संख्यातसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हो, उसको संख्यातगुणवृद्धि कहते हैं । जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ को संख्यातके प्रमाण ४ से गुणा करनेसे १०२४ संख्यातगुणवृद्धिका स्थान होता है । इसही प्रकार असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिका स्वरूप जानना चाहिये । अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें अनंतका भाग देनेसे जो लब्ध आवै, उसको अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमेंसे घटानेसे जो शेष रहै, उसको अनंतभागहानिका स्थान कहते हैं । जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ में अनंतके प्रमाण १६ का भाग देनेसे १६ पाये, सो १६ को २५६ मेंसे घटानेसे २४० रहे । इस ही प्रकार असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिका स्वरूप जानना चाहिये । अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें संख्यातका भाग देनेसे जो लब्ध आवे, उसको संख्यातगुणहानि कहते हैं । जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ में संख्यातके प्रमाण ४ का भाग देनेसे ६४ पाये, इसही प्रकार असंख्यातगुणहानि और अनन्तगुणहानिका स्वरूप जानना । इस षट्स्थान पतितहानिवृद्धिका खुलासा अभिप्राय यह है कि, जब किसी गुणमें वृद्धि या हानि होती है, तो एक या दो अविभागप्रतिच्छेदोंकी वृद्धि या हानि नहीं होती, किन्तु वृद्धि और हानिके उपर्युक्त छह २ स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानरूप वृद्धि या हानि होती है ।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें धर्मअधर्मनिरूपणनामक चतुर्थअधिकार समाप्त हुआ ।

पांचवां अधिकार ।

(आकाशद्रव्यनिरूपण)

जो जीवादिक समस्त द्रव्योंको युगपत् अवकाश दान देता है, उसको आकाशद्रव्य कहते हैं । यह आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अखंडित एकद्रव्य है । यद्यपि समस्त ही सूक्ष्मद्रव्य परस्पर एक

दूसरेको अवकाश देते हैं, परन्तु आकाशद्रव्य समस्तद्रव्योंको युगपत् अवकाश देता है, इस कारण लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष नहीं आता है। यदि कोई कहै कि, यह अवकाश–दातृत्व–धर्म लोकाकाशमें ही है, अलोकाकाशमें नहीं है। क्योंकि अलोकाकाशमें कोई दूसरा द्रव्य ही नहीं है। इस कारण आकाशके लक्षणमें अव्याप्तिदोष आता है। सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जैसे जलमें यह शक्ति है कि, हंस जलमें आवै तो उसे अवकाश देवे, परन्तु किसी जलमें यदि हंस आकर प्रवेश न करै, तो उस हंसके अभावमें जलकी अवकाश देनेकी शक्तिका अभाव नहीं हो जाता है। इसी प्रकार अलोकाकाशमें यदि अन्य द्रव्य नहीं हैं, तो अन्यद्रव्योंके अभाव होनेसे आकाशकी अवकाशदातृत्वशक्तिका अभाव नहीं हो सकता। यह आकाशका स्वभाव है और स्वभावका कभी अभाव नहीं होता। इसलिये लक्षणमें अव्याप्तिदोष नहीं है। तथा असंभवदोषका भी संभव नहीं है। इसलिये उक्त लक्षण त्रिदोषवर्जित समीचीन है।

(शंका)—आकाशके सद्भावमें क्या प्रमाण है?

(समाधान)—जितने शब्द होते हैं, उनका कुछ न कुछ वाच्य अवश्य होता है। आकाश भी एक शब्द है, इसलिय इस आकाशशब्दका जो वाच्य है, वही आकाशद्रव्य है।

(शंका)—खरविषाण (गधेके सींग) भी शब्द है, तो इसका भी कोई वाच्य अवश्य होगा।

(समाधान)—खरविषाण कोई शब्द नहीं है, किन्तु एक शब्द खर है और दूसरा शब्द विषाण है। इसलिये खरका भी वाच्य है और विषाणका भी वाच्य है। परन्तु खरविषाण समासान्त पदका कोई वाच्य नहीं है। अथवा यदि कोई खर (गधा) मरकर बैल होवे, तो भूतनैगमनयकी अपेक्षासे उस बैलको खर कह सकते हैं। और विषाण उसके हैं ही, इसलिये कथंचित् खरविषाणका भी वाच्य है।

(शंका)—आकाश कोई द्रव्य नहीं है क्योंकि आकाशमें द्रव्यका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य घटित नहीं होता।

(समाधान)—आकाशद्रव्य सदा विद्यमान् है। इसलिये ध्रौव्यमें तो कोई शंका ही नहीं है, रहा उत्पाद और व्यय सो इस प्रकार हैं कि, समस्त द्रव्योंमें उत्पाद और व्यय दो प्रकारसे होते हैं, १ स्वप्रत्यय और २ परप्रत्यय। समस्त द्रव्योंमें अपने अपने अगुरुलघुगुणके षट्स्थानपतितहानिवृद्धिद्वारा परिणमनको स्वप्रत्ययउत्पाद-व्यय कहते हैं। भावार्थ,–प्रत्येक द्रव्यमें अपने २ अगुरु लघुगुणकी पूर्व अवस्थाके त्यागको व्यय कहते हैं और नवीन अवस्थाकी प्राप्तिको उत्पाद कहते हैं। इन व्यय और उत्पादमें किसी दूसरे पदार्थकी अपेक्षा नहीं हैं, इसलिये इनको स्वप्रत्यय (स्वनिमित्तक) कहते हैं। जीव और पुद्गलद्रव्यमें अनेक प्रकार विभाव व्यञ्जनपर्याय होते रहते हैं। प्रथम समयमें किसी एक पर्यायरूपपरिणत जीव अथवा पुद्गलद्रव्यको आकाशद्रव्य अवकाश देता था, किन्तु दूसरे

समयमें वही आकाश द्रव्य किसी दूसरी पर्यायरूपपरिणत उस ही जीव अथवा पुद्गलको अवकाश देता है। जब अवकाशयोग्य पदार्थ एक स्वरूप न रहकर अनेकरूप होता रहता है, तो आकाशकी अवकाशदातृत्वशक्तिमें भी अनेकरूपता स्वयसिद्ध है। यह अनेकरूपता जीव और पुद्गलके निमित्तसे होती है, इसलिये इसको परप्रत्यय कहते हैं। भावार्थ—अनेक पर्यायरूप-परिणत जीव और पुद्गलको अवकाश देनेवाले आकाशद्रव्यकी अवकाशदातृत्वशक्तिकी पूर्व अवस्थाके त्यागको परप्रत्ययव्यय कहते हैं और नवीन अवस्थाकी प्राप्तिको परप्रत्ययउत्पाद कहते हैं। इसही प्रकार धर्म अधर्म काल और शुद्ध जीवमें भी स्वप्रत्यय और परप्रत्यय उत्पाद-व्यय घटित कर लेना चाहिये। भावार्थ:—समस्त द्रव्योंमें अगुरु लघुगुणके परिणमनसे स्वप्रत्यय-उत्पाद-व्यय होते हैं और अनेक प्रकार गतिरूप-परिणत जीव और पुद्गल द्रव्यको गमनमें सहकारी धर्मद्रव्यके गतिसहकारित्व गुणमें अनेक प्रकार स्थितिरूपपरिणत जीव और पुद्गल द्रव्यको स्थितिमें सहकारी अधर्मद्रव्यके स्थिति सहकारित्व गुणमें, अनेक प्रकार पर्यायरूपपरिणत जीव और पुद्गलादिकोंके परिणमनसहायी कालद्रव्यके वर्त्तनागुणमें, और अनेक अवस्थारूपपरिणत जीव और पुद्गलादि द्रव्योंके जाननेवाले शुद्धजीवके केवलज्ञानगुणमें परप्रत्यय उत्पाद और व्यय होते हैं।

(शंका)—शुद्ध जीवके केवलज्ञान गुणमें उत्पादव्यय संभव नहीं होते। क्योंकि केवल-ज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंको युगपत् जानता है। इसलिये जो उसने पहले जाना है उसको ही पीछे जानता है।

(समाधान)—ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि यद्यपि केवल ज्ञान, समस्त पदार्थोंकी त्रिकालवर्ती पर्यायोंको युगपत् जानता है, तथापि प्रथम समयमें जिस पदार्थकी वर्त्तमान पर्याय-को वर्तमान पर्यायरूप जानता है और आगामी पर्यायको आगामीरूप जानता है, द्वितीय समयमें उस ही पदार्थकी जिस पर्यायको प्रथम समयमें वर्त्तमानपर्यायरूप जाना था, उसको इस दूसरे समयमें भूतपर्यायरूप जानता है, तथा जिस पर्यायको प्रथम समयमें आगामी पर्यायरूप जाना था, उस पर्यायको इस दूसरे समयमें वर्त्तमान पर्यायरूप जानता है। इसलिये केवलज्ञानमें उत्पादव्यय अच्छी तरह घटित होते हैं।

यह आकाशद्रव्य यद्यपि निश्चयनयकी अपेक्षासे अखंडित एक द्रव्य है, तथापि व्यवहार-नयकी अपेक्षासे इसके दो भेद हैं। १ लोकाकाश, और २ अलोकाकाश। भावार्थ:—सर्वव्यापी अनन्त अलोकाकाशके बिलकुल बीचमें कुछ भागमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हैं। सो जितने आकाशमें ये पांच द्रव्य पाये जाते हैं, उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं और बाकीके आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। अलोकाकाश लोकाकाशके बाहर समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो रहा है। वहां आकाशद्रव्यके सिवाय दूसरा कोई भी द्रव्य नहीं है, इसलिये अलोकाका-शके विषयमें कुछ विशेष वक्तव्य नहीं है। किन्तु लोकाकाशके विषयमें बहुत कुछ वक्तव्य है, इस-लिये उसका सविस्तर स्वरूप लिखा जाता है।

जीवादिक पांच द्रव्य और लोकाकाशके समूहकी 'लोक' संज्ञा है। ये छहों द्रव्य द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे नित्य हैं। इसलिये लोक भी कथंचित् नित्य है। और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अनित्य है, इसलिये लोक भी कथंचित् अनित्य है। बहुतसे भोले भाई इस लोकको जीवराशि भिन्न किसी परिकल्पित ईश्वरकृत मानते हैं और उसकी सिद्धिके लिये अनेक मिथ्यायुक्तियोंकी कल्पना करते हैं, जिनका कि निराकरण किसी आगामी अधिकारमें स्वतन्त्ररूपसे किया जायगा। यहांपर केवल इतना ही कहना बस होगा कि इस लोकका न तो कोई कर्ता है और न कोई हर्ता है किन्तु स्थूलाकारकी अपेक्षासे अनादिनिधन (नित्य) है और सूक्ष्माकारसे अनित्य है। इस लोकके आकारको अनेक मतवालोंने अनेक प्रकारसे माना है। यहां उन सबकी उपेक्षा करके जैन सिद्धान्तके अनुसार लोकका आकार लिखा जाता है।

लोक

लोककी ऊंचाई चौदह राजू, मोटाई (उत्तर और दक्षिण दिशामें) सर्वत्र सातराजू और पूर्व और पश्चिम दिशामें चौड़ाई मूलमें सातराजू, सातराजूकी ऊंचाई पर एक राजू, साढे दश राजूकी ऊंचाईपर पांच राजू और अंतमें एक राजू है। गणित करनेसे लोकका क्षेत्रफल ३४३ घन राजू होता है। भावार्थ:—समस्त लोकके एक एक राजू लंबे चौडे और मोटे खंड करनेसे ३४३ खंड होते हैं। यह लोक सब तरफसे तीन वात (पवन) वलयोंसे वेष्टित है। भावार्थ:—लोक घनोदधिवातवलयसे, घनोदधि घनवातवलयसे और घन तनुवातवलयसे वेष्टित है। तनुवातवलय आकाशके आश्रय है और आकाश अपने ही आश्रय है। उसको दूसरे आश्रयकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आकाश सर्वव्यापी है। घनोदधिवातवलयका वर्ण मूंगके सदृश घनोदधि वातवलयका वर्ण गोमूत्रके सदृश और तनुवातवलयका वर्ण अव्यक्त है। इस लोकके बिलकुल बीचमें एक राजू चौडी, एक राजू लम्बी और चौदह राजू ऊंची त्रसनाडी है। भावार्थ,—त्रसजीव (द्वींद्रियादिक) त्रसनाड़ीमेंही होते हैं। [1] त्रसनाड़ीके बाहर त्रसजीव नहीं होते।

इस लोकके तीन भाग हैं १ अधोलोक २ मध्यलोक और ३ ऊर्द्ध्वलोक। मूलसे सात राजूकी ऊंचाई तक अधोलोक है, सुमेरुपर्वतकी ऊंचाई (एक लाख चालीस योजन) के समान मध्यलोक है और सुमेरुपर्वतसे ऊपर अर्थात् एक लाख चालीस योजन कम सात राजू प्रमाणे ऊर्द्ध्वलोक है। अब प्रथम ही अधोलोकका वर्णन किया जाता है।

---

[1] जिस समय त्रसनाड़ीके बाहरसे स्थावर जीव स्थावर शरीरको छोड़कर त्रसनाड़ीमें त्रसशरीर धारण करनेके लिये विग्रहगतिमें होता है, उस समय तथा त्रसनाड़ीमेंसे त्रसनाड़ीके बाहर उपजनेवाले जीवके मारणान्तिक समुद्घात करते समय और कपाट प्रतर और लोकपूर्ण केवल-समुद्घातके समय त्रसनाड़ीके बाहर भी त्रसजीव होते हैं।

अधोलोक ।

नीचेसे लगाकर मेरुकी जड़ पर्यन्त सात राजू ऊंचा अधोलोक है। जिस पृथ्वीपर अस्मदादिक निवास करते हैं, उस पृथ्वीका नाम चित्रा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक हजार योजन है और यह पृथ्वी मध्यलोकमें गिनी जाती है। सुमेरु पर्वतकी जड़ एक हजार योजन चित्रा पृथ्वीके भीतर है तथा निन्यानवै हजार योजन चित्रा पृथ्वीके ऊपर है और चालीस योजनकी चूलिका है। सब मिलकर एक लाख चालीस योजन ऊंचा मध्यलोक है। मेरुकी जड़के नीचेसे अधोलोकका प्रारंभ है। सबसे प्रथम मेरुपर्वतकी आधारभूत रत्नप्रभा पृथ्वी है। इस पृथ्वीका पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्त पर्यन्त विस्तार है, और इस ही प्रकार शेष छह पृथ्वियोंका भी पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्तपर्यन्त विस्तार है। मोटाईका प्रमाण सबका भिन्न २ है। रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटाई एकलाख ८० हजार योजन है। रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे पृथ्वीको आधारभूत घनोदधि घन और तनुवातवलय[1] है। तनुवातवलयके नीचे कुछ दूर तक केवल आकाश है। आगे चलकर शर्कराप्रभानामक दूसरी पृथ्वी है, जिसकी मोटाई बत्तीस हजार योजन है। मेरुकी जड़से शर्कराप्रभापृथ्वीके अन्ततक एक राजू है, जिसमेंसे दोनों पृथिवियोंकी मोटाई दो लाख बारह हजार योजन घटानेसे दोनों पृथिवियोंका अन्तर निकलता है। शर्कराप्रभाके नीचे कुछ दूरतक केवल आकाश है, जिसके आगे अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभा तीसरी पृथ्वी है। दूसरी पृथ्वीके अन्तसे तीसरी पृथ्वीके अन्ततक एक राजू है। इस ही प्रकार आगे भी है। अर्थात् तीसरीके अंतसे चौथीके अंततक, चौथीके अंतसे पांचवींके अंततक, पांचवींके अंतसे छट्ठीके अंततक और छट्ठीके अन्तसे सातवींके अंततक एक २ राजू है। चौथी पंकप्रभा पृथ्वी २४००० योजन मोटी, पांचवीं धूमप्रभा २०००० योजन मोटी छट्ठी तमःप्रभा १६००० योजन मोठी और सातवीं महातमःप्रभा ८००० योजन मोठी है। सातवीं पृथ्वीके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश निगोदादिक जीवोंसे भरा हुआ है। वहां कोई पृथ्वी नहीं है। इन सातो पृथ्वियोंके क्रमसे घर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये भी अनादिप्रसिद्ध नाम हैं।

पहली रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं–१ खरभाग, २ पंकभाग, और ३ अब्बहुलभाग। खरभागकी मोटाई १६००० योजन, पंकभागकी मोटाई ८४००० योजन और अब्बहुल भागकी मोटाई ८०००० योजन है।

जीवोंके दो भेद हैं, संसारी और मुक्त। जिनमेंसे मुक्तजीव लोकके शिखरपर निवास करते हैं और संसारी जीवोंका निवासक्षेत्र समस्त लोक है। संसारी जीवोंके चार भेद हैं–देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी। देवोंके चार भेद हैं–१ भवनवासी, २ व्यन्तर, ३ ज्योतिषी, ४ और ५ वैमानिक। भवनवासियोंके दश भेद हैं–१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ विद्युत्कुमार, ४ सुपर्ण-

१ इसही प्रकार शेष छह पृथिवियोंके नीचे भी बीस २ हजार योजन मोटे तीन वातवलय समझना।

कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ वातकुमार, ७ स्तनितकुमार, ८ उदधिकुमार, ९ द्वीपकुमार, और १० दिक्कुमार । व्यंतरोंके आठ भेद हैं—१ किन्नर, २ किंपुरुष, ३ महोरोग, ४ गंधर्व, ५ यक्ष, ६ राक्षस, ७ भूत, और ८ पिशाच । पहली पृथ्वीके खरभागमें असुरकुमारको छोड़कर शेष नव प्रकारके भवनवासी देव तथा राक्षसभेदको छोड़कर शेष सप्त प्रकारके व्यन्तरदेव निवास करते हैं । पंकभागमें असुरकुमार और राक्षसोंके निवासस्थान है और अब्बहुलभाग तथा शेषकी छह पृथिवियोंमें नारकियोंका निवास है ।

नारकियोंकी निवासरूप सातो पृथिवियोंमें भूमिमें तलघरोंकी तरह ४९ पटल हैं । भावार्थ:—पहली पृथ्वीके अब्बहुलभागमें १३, दूसरी पृथ्वीमें ११, तीसरी पृथ्वीमें ९, चौथीमें ७, पांचवींमें ५, छट्ठीमें ३ और सातवीं पृथ्वीमें एक पटल है । ये पटल इन भूमियोंके ऊपरनीचेके एक एक हजार योजन छोड़कर समान अन्तरपर स्थित हैं। अब्बहुलभागके १३ पटलोंमें से पहले पटलका नाम सीमंतक पटल है । इस सीमंतक पटलमें सबके मध्यमें मनुष्य लोकके समान ४५ लक्ष योजन चौड़ा गोल (कूपवत्) इन्द्रकबिल (नरक) है । चारों दिशाओंमें असंख्यात योजन चौड़े उनचास २ श्रेणिवद्धनरक हैं और चारो विदिशाओंमें अड़तालिस २ असंख्यात याजन चौड़े श्रेणिवद्धनरक हैं और दिशा विदिशाओंके वीचमें प्रकीर्णक (फुटकर) नरक हैं । जिनमें कोई संख्यात योजन चौड़े हैं और कोई असंख्यात योजन चौडे हैं। प्रत्येक पटल प्रतिश्रेणिवद्धनरकोंकी संख्यामें एक २ कमती होता जाता है । और अंतके उनचासवें पटलमें चारों दिशाओंमें एक २ श्रेणीवद्धनरक है तथा विदिशाओंमें एक भी श्रेणीवद्ध नरक नहीं है और न कोई प्रकीर्णक नरक है । प्रथम पृथ्वीके अब्बहुल भागमें तीस लाख नरक हैं, दूसरी पृथ्वीमें पच्चीस लाख, तीसरी पृथ्वीमें पंद्रह लाख, चौथी पृथ्वीमें दश लाख, पांचवीं पृथ्वीमें तीन लाख, छट्ठी पृथ्वीमें पांच कम एक लाख और सातवी पृथ्वीमें पांच नरक हैं । सातों पृथिवियोंके इंद्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंका जोड़ चौरासी लाख है । इन ही नरकोंमें नारकी जीवोंका निवास है ।

पहली पृथ्वीके पहले पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई तीन हाथ है, द्वितीयादिक पटलोंमें क्रमसे वृद्धि होकर पहली पृथ्वीके तेरहवें पटलमें सात धनुष और सवा तीन हाथकी ऊंचाई है । पहली पृथ्वीमें जो उत्कृष्ट ऊंचाई है, उससे किंचित् अधिक दूसरी पृथ्वीके नारकियोंकी जघन्य ऊंचाई है । इसही प्रकार द्वितीयादिक पृथिवियोंमें जो उत्कृष्ट उत्सेध (ऊंचाई) है, वही किंचित् अधिक सहित तृतीयादिक पृथिवियोंमें जघन्य देहोत्सेध (शरीरकी ऊंचाई) है । पहली पृथ्वीके अंतिम इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट उत्सेध है, द्वितीय पृथ्वीके अंतिम इन्द्रकमें उससे दुगना उत्सेध है और इसही क्रमसे दुगना करते २ सातवीं पृथ्वीमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई पांचसौ धनुष है । पहली पृथ्वीमें नारकियोंकी जघन्य आयु दशहजार वर्षकी है । उत्कृष्ट आयु एक सागर है । प्रथमादिक पृथिवियोंमें जो जघन्य आयु है, वही किंचित् अधिक सहित द्वितीयादिक

पृथिवियोंमें उत्कृष्ट आयु है। द्वितीयादिक पृथिवियोंमें क्रमसे तीन, सात, दश, सत्रह, बावीस और तेतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है।

नारकी मरण करके नरक और देवगतिमें नहीं उपजते, किंतु मनुष्य और तिर्यंच गतिमें ही उपजते हैं और इसही प्रकार मनुष्य और तिर्यंच ही मरकर नरकगतिमें उपजते हैं। देवगतिसे मरण करके कोई जीव नरकमें उत्पन्न नहीं होते। असंज्ञी पंचेन्द्री (मनरहित) जीव मरकर पहले नरक तक ही जाते हैं आगे नहीं जाते। सरीसृप जातिके जीव दूसरी पृथ्वी तक ही जाते हैं, पक्षी तीसरे नरक तक ही जाते हैं, सर्प चौथे नरक तक ही जाते हैं, सिंह पांचवें नरक तक ही जाते हैं, स्त्री छट्ठे नरक तक ही जाती है, और कर्मभूमिके मनुष्य और मत्स्य सातवें नरक तक जाते हैं। भोगभूमिके जीव नरकको नहीं जाते किन्तु देव ही होते हैं। यदि कोई जीव निरंतर नरकको जाय, तो पहले नरकमें आठवार तक, दूसरे नरकमें सातवार तक, तीसरे नरकमें छहवार तक, चौथे नरकमें पांचवार तक, पांचवें नरकमें चारवार तक, छट्ठे नरकमें तीनवार तक, और सातवें नरकमें दोवार तक, निरंतर जा सकता है, अधिक वार नहीं जा सकता। किन्तु जो जीव सातवें नरकसे आया है, उसको सातवें अथवा किसी और नरकमें अवश्य जाना पड़ता है, ऐसा नियम है। सातवें नरकसे निकलकर मनुष्यगति नहीं पाता, किंतु तिर्यंचगतिमें अव्रती ही उपजता है। छट्ठे नरकसे निकले हुए जीव संयम (मुनिका चरित्र) धारण नहीं कर सकते। पांचवें नरकसे निकले हुए जीव मोक्षको नहीं जा सकते। चौथी पृथ्वीसे निकले हुए तीर्थंकर नहीं होते, किंतु पहले दूसरे और तीसरे नरकसे निकले हुए तीर्थंकर हो सकते हैं। नरकसे निकले हुए जीव बलभद्र नारायण प्रतिनारायण और चक्रवर्त्ती नहीं होते।

पापके उदयसे यह जीव नरकगतिमें उपजता है, जहां कि नानाप्रकारके भयानक तीव्र दुःखोंको भोगता है। पहली चार पृथ्वी तथा पांचवींके तृतीयांश नरकोंमें (बिलोंमें) उष्णताकी तीव्रवेदना है तथा नीचेके नरकोंमें शीतकी तीव्रवेदना है। तीसरी पृथ्वीपर्यन्त असुरकुमार जातिके देव आकर नारकियोंको परस्पर लड़ाते हैं। नारकियोंका शरीर अनेक रोगोंसे सदा ग्रसित रहता है, और परिणामोंमें नित्य क्रूरता बनी रहती है। नरकोंकी पृथ्वी महादुर्गन्ध और अनेक उपद्रवसहित होती है, नारकी जीवोंमें परस्पर जातिविरोध होता है। परस्पर एक दूसरेको नानाप्रकारके भयानक घोर दुःख देते हैं। छेदन भेदन ताड़न मारण आदि नानाप्रकारकी घोर वेदनाओंको भोगते हुए निरन्तर दुःसह दुःखका अनुभव करते रहते हैं। कोई किसीको कोल्हूमें पेलता है, कोई गरम लोहेकी पुतलीसे आलिंगन कराता है तथा वज्राग्निमें पचाता है, अथवा पीवके कुंडमें पटकता है। बहुत कहनेसे क्या नरकके एक समयके दुःखको सहस्र जिह्वावाला भी वर्णन नहीं कर सकता। नरकमें समस्त कारण क्षेत्रस्वभावसे ही दुःखदायक होते हैं। एक दूसरेको देखते ही कुपित हो जाते हैं। जो अन्य भवमें मित्र था, वह भी नरकमें शत्रुभावको प्राप्त होता है। जितनी जिसकी आयु है उसको उतने काल पर्यंत ये सब दुःख भोगने ही पड़ते हैं। क्योंकि नरकमें अकालमृत्यु

नहीं है। जिस जीवने नरक आयुकी जितनी स्थिति बांधी है, उतने वर्ष पर्यन्त उसको नरकमें रहना ही पड़ता है। यहां इतना विशेष जानना कि, जिस जीवने आगामी भवकी नरक आयु बांधी है उस जीवके वर्त्तमान (मनुष्य या तिर्यंच) भवमें नरकायुकी स्थिति हीनाधिक हो सकती है, किन्तु नरक आयुकी स्थिति उदय आनेके पीछे हीनाधिक नहीं हो सकती। महापापोंके सेवन करनेसे यह जीव नरकको जाता है, जहां चिरकालपर्यन्त घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। इसलिये जो महाशय इन नरकोंके घोर दुःखोंसे भयभीत हुए हों, वे जूआ चोरी मद्य मांस वेश्या परस्त्री तथा शिकार आदिक महापापोंको दूरहीसे छोड़ देवें। अब आगे संक्षेपसे मध्यलोकका कथन करते हैं;—

मध्यलोक।

अधोलोकसे ऊपर एक राजू लम्बा एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊंचा मध्यलोक है। इस मध्यलोकके बिलकुल बीचमें गोलाकार एक लक्ष योजन व्यासवाला जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीपको खाईकी तरह बेड़े हुए गोलाकार लवणसमुद्र है। इस लवणसमुद्रकी चौड़ाई सर्वत्र दो लक्ष योजन है। पुनः लवणसमुद्रको चारों तरफसे बेड़े हुए गोलाकार धातुकीखण्ड द्वीप है, जिसकी चौड़ाई सर्वत्र चार लक्ष योजन है। धातुकी खंडको चारों तरफसे बेड़े हुए आठ लक्ष योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। तथा कालोदधि समुद्रको चारों तरफसे बेड़े हुए सोलह लक्ष योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। इसही प्रकारसे दूने दूने विस्तारको लिये परस्पर एक दूसरेको बेड़े हुए असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। अंतमें स्वयंभूरमण समुद्र है। चारों कोनोंमें पृथ्वी है। पुष्करद्वीपके बीचों बीच मानुषोत्तर-पर्वत है, जिससे पुष्करद्वीपके दो भाग हो गये हैं। जम्बूद्वीप धातुकीखंड और पुष्करार्द्ध इस प्रकार ढाई द्वीपमें मनुष्य रहते हैं। ढाई द्वीपके बाहर मनुष्य नहीं हैं। तथा तिर्यंच समस्त मध्यलोकमें निवास करते हैं। स्थावर जीव समस्त लोकमें भरे हुए हैं। जलचर जीव लवणोदधि कालोदधि और स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रोंमें ही होते हैं, अन्य समुद्रोंमें नहीं।

जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन चौड़ा गोलाकार है। इस जम्बूद्वीपमें पूर्व और पश्चिम दिशामें लम्बायमान दोनों तरफ पूर्व और पश्चिम समुद्रको स्पर्श करते हुए १ हिमवन्, २ महाहिमवन्, ३ निषध, ४ नील, ५ रुक्मि, ६ और शिखरी, इसप्रकार छह कुलाचल (पर्वत) हैं। इन कुलाचलोंके निमित्तसे सात भाग हो गये हैं। दक्षिण दिशाके प्रथम-भागका नाम भरतक्षेत्र द्वितीय भागका नाम हैमवत और तृतीय भागका नाम हरिक्षेत्र है। इसही प्रकार उत्तर दिशाके प्रथम भागका नाम ऐरावत द्वितीय भागका नाम हैरण्यवत और तृतीय भागका नाम रम्यकक्षेत्र है। मध्य भागका नाम विदेहक्षेत्र है। भरत–

क्षेत्रकी चौड़ाई ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है अर्थात् जम्बूद्वीपकी चौड़ाईके एक लक्ष योजनके १९० भागोंमेंसे एक भाग प्रमाण है । हिमवत् पर्वतकी चौड़ाई दो भाग प्रमाण, हैमवत-क्षेत्रकी चार भाग प्रमाण, महाहिमवत् पर्वतकी आठ भाग प्रमाण, हरिक्षेत्रकी १६ भाग प्रमाण और निषध पर्वतकी ३२ भाग प्रमाण है । सब मिलकर ६३ भाग प्रमाण हुए । तथा इसही प्रकार उत्तर दिशामें ऐरावत क्षेत्रसे लगाकर नीलपर्वततक ६३ भाग हैं । सब मिलकर १२६ भाग हुए । तथा मध्यका विदेहक्षेत्र ६४ भाग प्रमाण है । ये सब भाग मिलकर जम्बूद्वीपकी चौड़ाई १९० भाग अथवा एक लक्ष योजन प्रमाण होती है ।

हिमवत् पर्वतकी ऊंचाई १०० योजन महाहिमवत्की २०० योजन निषधकी ४००, नीलकी ४००, रुक्मीकी २००, और शिखरीकी ऊंचाई १०० योजन है । इन सब-कुलाचलोंकी चौड़ाई ऊपर नीचे तथा मध्यमें समान है । इन कुलाचलोंके पसवाड़ोंमें अनेक प्रकारकी मणियां हैं। ये हिमवदादिक छहों पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चांदी, तपे हुए सुवर्ण, वैडूर्य, चांदी और सुवर्णके हैं । इन हिमवदादि छहों कुलाचलोंके ऊपर क्रमसे पद्म, महापद्म, तिगिंच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक संज्ञक छह कुण्ड हैं । इन पद्मादिक कुण्डों-की क्रमसे लंबाई १०००।२०००।४०००।४०००।२००० और १००० योजन है। चौड़ाई ५००।१०००।२०००।२०००।१००० और ५०० योजन है। गहराई १०।२०।४०।४० २० और १० योजन है । इन पद्मादिक सब कुण्डोंमें एक २ कमल है, जिनकी ऊंचाई तथा चौड़ाई १।२।४।४।२ और १ योजन प्रमाण है। इन कमलोंमें पल्योपम आयुवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी जातिकी देवियां सामानिक और पारिषद्र जातिके देवोंसहित क्रमसे निवास करती हैं ।

इन भरतादि सात क्षेत्रोंमें एक २ में दो २ के क्रमसे गंगा सिन्धु रोहित् रोहितास्या हरित् हरिकान्ता शीता शीतोदा नारी नरकान्ता सुवर्णकूला रूपकूला रक्ता और रक्तोदा ये १४ चौदह नदी हैं । इन सात युगलोंमेंसे गंगादिक पहली २ नदियां पूर्वसमुद्रमें और सिन्ध्वादिक पिछली २ नदियां पश्चिमसमुद्रमें प्रवेश करती हैं । गंगा सिन्धु रोहितास्या ये तीन नदी पद्मकुण्डमेंसे निकली हैं। रक्ता रक्तोदा और सुवर्णकूला पुण्डरीककुण्डमेंसे निकली हैं। शेष चार कुण्डोंमेंसे शेष आठ नदियां निकली हैं, अर्थात् एक २ कुण्डमेंसे एक २ पूर्व-गामिनी और एक २ पश्चिमगामिनी इस प्रकार दो २ नदियां निकली हैं। गंगा सिन्धु इन दो महानदियोंका परिवार चौदह २ हजार क्षुल्लक नदियोंका है । रोहित् रोहितास्याका प्रत्येकका परिवार अट्ठाईस २ हजार नदियां हैं । इसही प्रकार शीता शीतोदा पर्यन्त दूना २ और आगे आधा आधा परिवारनदियोंका प्रमाण है । विदेहक्षेत्रके बीचोंबीच सुमेरु पर्वत है । सुमेरु पर्वतकी एकहजार योजन भूमिमें जड़ है । तथा निन्यानवै हजार

योजन भूमिके ऊपर ऊंचाई है और चालीस योजनकी चूलिका है। यह सुमेरुपर्वत गोलाकार भूमिपर दश हजार योजन चौड़ा तथा ऊपर एक हजार योजन चौड़ा है। सुमेरु पर्वतके चारों-तरफ भूमिपर भद्रशालवन है। यह भद्रशालवन पूर्व और पश्चिमदिशामें बावीस २ हजार योजन और उत्तर दक्षिणदिशामें ढाई २ सौ योजन चौड़ा है। पृथ्वीसे पांचसौ योजन ऊंचा चलकर सुमेरुकी चारोंतरफ प्रथमकटनीपर पांचसौ योजन चौड़ा नंदनवन है। नंदनवनसे बासठ हजार पांचसौ योजन ऊंचा चलकर सुमेरुकी चारों तरफ द्वितीय कटनी-पर पांचसौ योजन चौड़ा सौमनस-वन है। सौमनसवनसे छत्तीस हजार योजन ऊंचा चलकर सुमेरुके चारों तरफ तीसरी कटनीपर चारसौ चौरानवै योजन चौड़ा पाण्डुकवन है। मेरु-की चारों विदिशाओंमें चार गजदंत पर्वत हैं। दक्षिण और उत्तर भद्रशाल तथा निषध और नीलपर्वतके बीचमें देवकुरु और उत्तरकुरु हैं। मेरुकी पूर्वदिशामें पूर्वविदेह और पश्चिम दिशामें पश्चिमविदेह है। पूर्वविदेहके बीचमें होकर शीता और पश्चिमविदेहमें होकर शीतोदा नदी पूर्व और पश्चिमसमुद्रको गई हैं। इसप्रकार दोनों नदियोंके दक्षिण और उत्तर तटकी अपेक्षासे विदेहके चार भाग हैं। इन चारों भागोंमेंसे प्रत्येक भागमें आठ २ देश हैं। इन आठ देशोंका विभाग करनेवाले वक्षारपर्वत तथा विभंगा नदी हैं। भावार्थ;—१ पूर्वभद्रशालवनकी वेदी, २ वक्षार, ३ विभंगा, ४ वक्षार, ५ विभंगा, ६ वक्षार, ७ विभंगा, ८ वक्षार ९ और देवारण्यवनकी वेदी इसप्रकार नव सीमाओंके बीचबीचमें आठआठ देश हैं। इसप्रकार विदेहक्षेत्रमें ३२ देश हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रके बीचमें विजयार्द्ध पर्वत है। इन पर्वतोंमें दो २ गुफा हैं, जिनमें होकर गंगा सिन्धु और रक्ता रक्तोदा नदी निकली हैं। इस प्रकार भरत और ऐरावतके छह छह खंड हो गये हैं। इनमेंसे एक एक आर्यखंड और पांच पांच म्लेच्छखण्ड हैं।

जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखंड और पुष्करार्धद्वीपमें है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, धातुकीखण्ड और पुष्करार्द्ध इन दोनों द्वीपोंकी उत्तर और दक्षिण दिशा-ओंमें दो २ इष्वाकार पर्वत हैं, जिससे इन दोनों द्वीपोंके दो २ खण्ड हो गये हैं। इन दोनों द्वीपोंकी पूर्व और पश्चिम दिशामें दो २ मेरु हैं अर्थात् दो मेरु धातुकी खण्डमें और दो मेरु पुष्करार्द्धमें हैं। जिसप्रकार क्षेत्र कुलाचल द्रह कमल और नदी आदिकका कथन जम्बूद्वीपमें है, उतनाही उतना प्रत्येक मेरुका समझना। भावार्थ;—जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखण्डकी और धातुकीखंडके समान रचना पुष्करार्द्धकी है। इनकी लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई आदिकका कथन विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा है। जिन्हें सविस्तर जाननेकी इच्छा होय, उन्हें त्रैलोक्यसार ग्रन्थसे जानना चाहिये।

मनुष्यलोकके भीतर पंद्रह कर्मभूमि और तीस भोगभूमि है। भावार्थ;—एक २

मेरुसंबंधी भरत ऐरावत तथा देवकुरु और उत्तरकुरुको छोड़कर विदेह इसप्रकार तीन २ तो कर्मभूमि और हैमवत हरि देवकुरु उत्तरकुरु रम्यक और हैरण्यवत ये छह २ भोगभूमि हैं। पांचों मेरुकी मिलकर १५ कर्मभूमि और ३० भोगभूमि हैं। जहां असिमसिकृष्यादि षट्कर्मकी प्रवृत्ति हो, उसको कर्मभूमि कहते हैं और जहां कल्पवृक्षोंद्वारा भोगोंकी प्राप्ति हो, उसको भोगभूमि कहते हैं। भोगभूमिके तीन भेद हैं-१ उत्कृष्ट, २ मध्यम और ३ जघन्य। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि हैं। हरि और रम्यक क्षेत्रोंमें मध्यमभोगभूमि और देवकुरु तथा उत्तरकुरुमें उत्कृष्ट भोगभूमि है। मनुष्यलोकसे बाहर सर्वत्र जघन्य भोगभूमिकीसी रचना है किन्तु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें तथा चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकीसी रचना है। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव भोगभूमिमें नहीं होते अर्थात् पंद्रह कर्मभूमि और उत्तरार्द्ध अन्तिम द्वीप तथा समस्त अन्तिम समुद्रमें ही विकलत्रय जीव हैं। तथा समस्त द्वीपसमुद्रोंमें भी भवनवासी और व्यंतरदेव निवास करते हैं।

यद्यपि कल्पकालका कथन कालाधिकारमें करना चाहिये था, परंतु कर्मभूमि और भोगभूमिसे उसका घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकारण प्रसङ्गवश यहां कुछ कल्पकालका कथन किया जाता है। वीस कोड़ाकोड़ी अद्धासागरके समयोंके समूहको कल्प कहते हैं। कल्पकालके दो भेद हैं एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दोनोंही कालोंका प्रमाण दश दश कोड़ाकोड़ी सागरका है। अवसर्पिणीकालके छह भेद हैं, १ सुषमासुषमा, २ सुषमा, ३ सुषमादुःषमा, ४ दुःषमासुषमा, ५ दुःषमा और ६ दुःषमादुःषमा। उत्सर्पिणीके भी छह भेद विपरीत क्रमसे हैं। १ दुःषमादुःषमा, २ दुःषमा, ३ दुःषमासुषमा, ४ सुषमादुःषमा, ५ सुषमा, और ६ सुषमासुषमा। सुषमासुषमाका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागर है। सुषमाका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागर है। सुषमादुःषमाका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी सागर है। दुःषमासुषमाका प्रमाण ४२००० वर्ष घाटि एक कोड़ाकोड़ी सागर है। दुःषमाका प्रमाण २१००० वर्ष है, तथा दुःषमादुःषमाका भी प्रमाण २१००० वर्ष है। पांच मेरुसंबंधी पांच भरतक्षेत्र तथा पांच ऐरावत क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके छह २ कालोंके द्वारा वहां रहनेवाले जीवोंके आयुः शरीर बल वैभवादिककी हानि वृद्धि होती है। भावार्थ;-अवसर्पिणीके छहों कालोंमें क्रमसे घटते हैं। और उत्सर्पिणीके छहों कालोंमें क्रमसे बढ़ते हैं। अवसर्पिणीकालके प्रथम कालकी आदिमें जीवोंकी आयु तीन पल्य प्रमाण है और अंतमें दो पल्य प्रमाण है। दूसरे कालके आदिमें दो पल्य और अन्तमें एक पल्य प्रमाण है। तीसरे कालकी आदिमें एक पल्य और अन्तमें

एक कोटि*पूर्व वर्ष प्रमाण है। चतुर्थ कालके आदिमें कोटिपूर्व और अन्तमें १२० वर्ष है। पांचवें कालके आदिमें १२० वर्ष अन्तमें २० वर्ष है। छठे कालके आदिमें २० वर्ष और अन्तमें १५ वर्ष है। यह सब कथन उत्कृष्टकी अपेक्षासे है। वर्त्तमानमें कहीं २ एकसौ वीस वर्षसे अधिक आयु भी सुननेमें आती है सो हुंडावसर्पिणीके निमित्तसे है। अनेक कल्प काल बीतनेपर एक हुंडाकाल आता है। इस हुंडाकल्पमें कई बातें विशेष होती हैं। जैसे चक्रवर्तीका अपमान, तीर्थंकरके पुत्रीका जन्म, और शलाका पुरुषोंकी संख्यामें हानि। उसही प्रकार आयुके संबंधमें भी यह हुंडाकृत विशेषता है। पहले कालकी आदिमें मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई तीन कोश अंतमें दो कोश है। दूसरे-की आदिमें दो कोश अंतमें एक कोश है। तीसरेकी आदिमें एक कोश अंतमें पांचसौ धनुष है। चौथे कालकी आदिमें पांचसौ धनुष अंतमें सात हाथ है। पांचवेंके आदिमें सात हाथ अंतमें दो हाथ है। छठेके आदिमें दो हाथ अंतमें एक हाथ है। इसही प्रकार बल वैभवादिकका क्रम जानना।

भोगभूमियोंको भोजन वस्त्र आभूषण आदि समस्त भोगोपभोगकी सामग्री दश-प्रकारके कल्पवृक्षोंसे मिलती है। भोगभूमिमें पृथ्वी दर्पणसमान मणिमयी छोटे २ सुगन्धित तृणसंयुक्त है। भोगभूमिमें माताके गर्भसे युगपत् स्त्रीपुरुषका युगल उत्पन्न होता है। भोगभूमिके बालक ४९ दिनमें क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। भोग-भूमिया सदाकाल भोगोंमें आसक्त रहते हैं तथा आयुके अंतमें पुरुष छींक लेकर और स्त्री जंभाई लेकर मरणको प्राप्त होते हैं। और उनका शरीर शरत्कालके मेघकी तरह विलुप्त हो जाता है। ये भोगभूमिया सबही मरणके पश्चात् नियमसे देवगतिको जाते हैं। प्रथमकालकी आदिमें उत्कृष्ट भोगभूमि है। फिर क्रमसे घटकर द्वितीय कालकी आदिमें मध्यम तथा तीसरेकी आदिमें जघन्य भोगभूमि है। पुनः क्रमसे घटकर तीसरेके अंतमें कर्मभूमिका प्रवेश होता है। तीसरे कालमें जब पल्यका आठवां भाग बाकी रहता है, तब मनुष्योंमें क्रमसे १४ कुलकर उत्पन्न होते हैं। इन कुलकरोंमें कई जातिस्मरण तथा कई अवधिज्ञानसंयुक्त होते हैं। ये कुलकर मनुष्योंके अनेक प्रकारके भय दूर करके उनको उत्तम शिक्षा देते हैं। चतुर्थकालमें ६३ शलाका (पदवीधारक) पुरुष होते हैं। जिनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र होते हैं। इन ६३ शलाका पुरुषोंका सविस्तर कथन प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंसे जानना। यहां इतना विशेष कि है, इस दुर्गम संसारसे मुक्ति इस चतुर्थकालमेंही होती है। चौवीसवें तीर्थंकरके मोक्ष जानेसे ६०५ वर्ष ५ मास पीछे पंचमकालमें शक राजा होता है। इस शक राजाके ३९४ वर्ष ७ मास पीछे

* चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग और चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है।

कल्की राजा होता है। इस कल्कीकी आयु ७० वर्षकी होती है। जिसमें ४० वर्ष राज्य करता है। तथा धर्मविमुख आचरणमें तल्लीन रहता है। कल्कीका पुत्र धर्मके सन्मुख सदाचारी होता है। इसप्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की राजा होता है। तथा इन कल्कियोंके बीचबीचमें एक २ उपकल्की होता है। यहां इतना विशेष जानना कि, मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका चार प्रकार जिनधर्मके संघका सद्भाव पंचमकाल पर्यन्त ही है। भावार्थ;—पंचम कालके अन्तमें धर्म अग्नि और राजा इन तीनोंका नाश होकर छठे कालमें मनुष्य पशुकी तरह नग्न धर्मरहित मांसाहारी होते हैं। इस छठे कालमें मरे हुए जीव नरक और तिर्यंच गतिको ही जाते हैं। तथा नरक और तिर्यंच इन दो गतिमेंसे ही मरण करके इस छठे कालमें जन्म लेते हैं। इस छठे कालमें मेघवृष्टि बहुत थोड़ी होती है तथा पृथ्वी रत्नादिक सारवस्तुरहित होती है। और मनुष्य तीव्रकषाययुक्त होते हैं। छठे कालके अन्तमें संवर्तक नामक बड़े जोरका पवन चलता है, जिससे पर्वत वृक्षादिक चूरचूर हो जाते हैं। तथा वहां बसनेवाले कुछ जीव मर जाते अथवा कुछ मूर्च्छित हो जाते हैं। उस समय विजयार्ध पर्वत तथा महागंगा और महासिन्धु नदियोंकी वेदियोंके छोटे छोटे बिलोंमें उन वेदी और पर्वतके निकटवासी जीव स्वयमेव प्रवेश करते हैं। अथवा दयावान् देव और विद्याधर मनुष्ययुगल आदिक अनेक जीवोंको उठाकर विजयार्द्ध पर्वतकी गुफादिक निर्बाधस्थानोंमें ले जाते हैं। इस छठे कालके अंतमें सात सात दिन पर्यन्त क्रमसे १ पवन, २ अत्यन्त शीत ३ क्षाररस, ४ विष, ५ कठोर अग्नि, ६ धूल, और ७ धुंवां, इसप्रकार ४९ दिनमें सात वृष्टि होती हैं। जिससे अवशिष्ट मनुष्यादिक जीव नष्ट हो जाते हैं। तथा विष और अग्निकी वर्षासे पृथ्वी एक योजन नीचेतक चूर २ हो जाती है। इसहीका नाम महाप्रलय है। यहां इतना विशेष जानना कि, यह महाप्रलय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके आर्यखण्डोंमें ही होता है अन्यत्र नहीं होता है। अब आगे उत्सर्पिणी कालके प्रवेशका अनुक्रम कहते हैं।

उत्सर्पिणीके दुःषमादुःषमा नामक प्रथम कालमें सबसे पहले सात दिन जलवृष्टि सात दिन दुग्धवृष्टि सात दिन घृतवृष्टि और सात दिनतक अमृतवृष्टि होती है। जिससे पृथ्वीमें पहले अग्निआदिककी वृष्टिसे जो उष्णता हुई थी, वह चली जाती है और पृथ्वी कान्तियुक्त सचिक्कण हो जाती है और जलादिककी वर्षासे नानाप्रकार लता बेलि विविध औषधि तथा गुल्मवृक्षादिक वनस्पति उत्पत्ति तथा वृद्धिको प्राप्त होती हैं। इस समय पृथ्वीकी शीतलता तथा सुगन्धताके निमित्तसे पहले जो प्राणी विजयार्द्ध तथा गंगा सिंधु नदीकी वेदियोंके बिलोंमें पहुंच गये थे, वे इस पृथ्वीपर आकर जहां तहां बस जाते हैं।

इस कालमें मनुष्य धर्मरहित नग्न रहते हैं और मृत्तिका आदिका आहार करते हैं । इस कालमें जीवोंकी आयु कायादिक क्रमसे बढते हैं । इसके पीछे उत्सर्पिणीका दुःषमा नामक दूसरा काल प्रवर्तता है । इस कालमें जब एक हजार वर्ष अवशिष्ट रहते हैं, तब १६ कुलकर होते हैं । ये कुलकर मनुष्योंको क्षत्रिय आदिक कुलोंके आचार तथा अग्निसे अन्नादिक पचानेका विधान सिखाते हैं । उसके पीछे दुःषमासुषमा नामक तृतीयकाल प्रवर्तता है, जिसमें त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं । उत्सर्पिणीमें केवल इसही कालमें मोक्ष होती है । तत्पश्चात् चौथे पांचवें और छठे कालमें भोगभूमि हैं । जिनमें आयुःकायादिक क्रमसे बढ़ते जाते हैं । भावार्थ अवसर्पिणीके १।२।३।४।५।६ कालकी रचना उत्सर्पिणीके ६।५।४।३।२।१ कालकी रचनाके समान है । यहां इतना विशेष जानना कि आयुकायादिककी क्रमसे अवसर्पिणीमें तो हानि होती है और उत्सर्पिणीमें वृद्धि होती है ।

देवकुरु और उत्तरकुरुक्षेत्रमें सदाकाल पहले कालकी आदिकी रचना है । दूसरेकालकी आदिकी रचना हरि और रम्यकक्षेत्रमें सदाकाल रहती है । तीसरे कालकी आदिकी रचना हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रमें अवस्थित है । चौथे कालकी आदिकी रचना विदेह क्षेत्रोंमें अवस्थित है । भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके पांच पांच म्लेच्छखंड तथा विद्याधरोंके निवासभूत विजयार्द्ध पर्वतकी श्रेणियोंमें सदा चौथा काल प्रवर्तता है । यहां इतना विशेष जानना कि, जब आर्यखंडमें अवसर्पिणीका प्रथम द्वितीय तृतीय तथा उत्सर्पिणीका चतुर्थ पंचम षष्ठ काल वर्तता है, उससमय यहां अवसर्पिणीके चतुर्थकालके आदिकी अथवा उत्सर्पिणीके तृतीय कालके अंतकी रचना रहती है । तथा जिस समय आर्यखंडमें अवसर्पिणीके पंचम और षष्ठ तथा उत्सर्पिणीके प्रथम और द्वितीय कालकी रचना है, उस समय यहां अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके अंतकी अथवा उत्सर्पिणीके तृतीय कालके आदिकी रचना है । और आर्यखंडमें जिसप्रकार क्रमसे हानिवृद्धियुक्त अवसर्पिणीके चतुर्थ अथवा उत्सर्पिणीके तृतीयकालकी रचना है, उसही प्रकार यहां भी जानना । आधा स्वयंभूरमण द्वीप तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें पंचमकालके आदिकीसी दुःषमा कालकी रचना है । और इनके सिवाय मनुष्यलोकसे बाहर समस्त द्वीपोंमें तथा कुभोगभूमियोंमें तीसरे कालकी आदिकी सी जघन्य भोगभूमिकी रचना है । लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तर्द्वीप हैं, जिनमें कुभोगभूमिकी रचना है । पात्रदानके प्रभावसे यह जीव भोगभूमिमें उपजता है । और कुपात्रदानके प्रभावसे कुभोगभूमिमें जाता है । इन कुभोगभूमियोंमें एक पल्य आयुके धारक कुमनुष्य निवास करते हैं । इन कुमनुष्योंकी आकृति नानाप्रकार है । किसीके केवल एक जंघा है । किसीके पूंछ है । किसीके सींग है । कोई गूंगे हैं । किसीके बहुत लम्बे कान हैं, जो ओढ़नेके काममें आते हैं ।

किसीके मुख सिंह घोडा कुत्ता भैंसा बन्दर इत्यादिकके समान हैं। ये कुमनुष्य वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें बसते हैं, और वहांकी मीठी मिट्टी खाते हैं, ये कुभोगभूमिया तथा भोगभूमिया मरकर नियमसे देवगतिमेंही उपजते हैं। इसही मध्यलोकमें ज्योतिष्क देवोंका निवास है, इसलिये प्रसंगवश यहां संक्षेपसे ज्योतिष्चक्रका वर्णन किया जाता है।

ज्योतिष्क देवोंके सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र और तारे इस प्रकार पांच भेद हैं। चित्रा पृथ्वीसे ७९० योजन ऊपर तारे हैं। तारोंसे दश योजन ऊपर सूर्य हैं। और सूर्योंसे ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। चन्द्रमाओंसे चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे चार योजन ऊपर बुध हैं। बुधोंसे तीन योजन ऊपर शुक्र हैं। शुक्रसे तीन योजन ऊपर गुरु हैं। गुरुसे तीन योजन ऊपर मंगल हैं। और मंगलसे तीन योजन ऊपर शनैश्चर हैं। बुधादिक पांच ग्रहोंके सिवाय तेरासी ग्रह और हैं, जिनमेंसे राहुके विमानका ध्वजादण्ड चन्द्रमाके विमानसे और केतुके विमानका ध्वजादण्ड सूर्यके विमानसे चार प्रमाणांगुल नीचे है। अवशेष इक्यासी ग्रहोंके रहनेकी नगरी बुध और शनिके बीचमें है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, देवगतिके चार भेदोंमेंसे ज्योतिष्क जातिके देव इन ज्योतिष्क विमानोंमें निवास करते हैं। इस ज्योतिष्क पटलकी मोटाई ऊर्द्ध्व और अधोदिशामें ११० योजन है। और पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलयपर्यंत है। तथा उत्तर और दक्षिण दिशामें एक राजू प्रमाण है। यहां इतना विशेष जानना कि, सुमेरु पर्वतके चारों तरफ ११२१ योजनतक ज्योतिष्क विमानोंका सद्भाव नहीं है। मनुष्यलोकपर्यन्त ज्योतिष्क विमान नित्य सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। किन्तु जम्बूद्वीपमें ३६, लवण समुद्रमें १३९, धातुकी खंडमें १०१०, कालोदाधिमें ४११२० और पुष्करार्द्धमें ९३२३० ध्रुव तारे (गतिरहित) हैं। और मनुष्यलोकसे बाहर समस्त ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं। अपनी २ जातिके ज्योतिष्क विमान समतलमें हैं। अर्थात् उनका ऊपरी भाग आकाशकी एकही सतहमें हैं। ऊंचे नीचे नहीं हैं। किन्तु तिर्यक्अंतर कुछ न कुछ अवश्य है। तारोंमें परस्पर जघन्य अन्तर एक कोशका सातवां भाग है। मध्यम अन्तर पचास योजन और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है। इन समस्त ज्योतिष्क विमानोंका आकार आधे गोलेके समान है। भावार्थ;—जैसे एक लोहके गोलेके समान दो खण्ड करके उनमेंसे एक खंडको इसप्रकारसे स्थापन करै कि, गोल भाग तो नीचेकी तरफ हो और समतलभाग ऊपरकी तरफ हो। ठीक ऐसा ही आकार समस्त ज्योतिष्क विमानोंका है। इन विमानोंके ऊपर ज्योतिषी देवोंके नगर बसते हैं। ये नगर अत्यन्त रमणीक और जिनमन्दिरसंयुक्त हैं। अब आगे इन विमानोंकी चौड़ाई और मोटाईका प्रमाण कहते हैं;—

चन्द्रमाके विमानका व्यास ५६/६१ योजन (एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे छप्पन भाग) है। सूर्यका विमान ४८/६१ योजन चौड़ा है। शुक्रका विमान एक कोश और बृहस्पतिका किंचिदून (कुछ कम) एक कोश चौड़ा है। तथा बुध मङ्गल और शनिके विमान आधआध कोश चौड़े हैं। तारोंके विमान कोई पावकोश कोई आधकोश कोई पौनकोश और कोई एक कोश चौड़े हैं। नक्षत्रोंके विमान एक २ कोश चौड़े हैं। राहु और केतुके विमान किंचिदून एक योजन चौड़े हैं। समस्त विमानोंकी मोटाई चौड़ाईसे आधी आधी है। सूर्य और चन्द्रमाके बारह २ हजार किरण हैं। चन्द्रमाकी किरणें शीतल हैं। तथा सूर्यकी किरणें उष्ण हैं। शुक्रकी ढाई हजार प्रकाशमान किरणें हैं। शेष ज्योतिषी मंदप्रकाशसंयुक्त हैं। चंद्रमाके विमानका सोलहवां भाग कृष्णपक्षमें कृष्णरूप और शुक्लपक्षमें शुक्लरूप प्रतिदिन परिणमन करता है। अथवा अन्य आचार्योंका इस विषयमें ऐसा अभिप्राय है कि, चंद्रमाके विमानके नीचे राहुका विमान गमन करता है। उस राहुके विमानकी इसही प्रकार गतिविशेष है कि जो कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक कलाका आच्छादन करता है। तथा शुक्लपक्षमें प्रतिदिन एक कलाका उद्भावन करता है। राहुके विमानके निमित्तसे छहमासमें एक बार शुक्ल पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है। तथा सूर्यके नीचे चलनेवाले केतुविमानके निमित्तसे छहमासमें एकबार अमावस्याको सूर्यग्रहण होता है। नरलोकमें ज्योतिष्क विमानोंको सिंह हस्ती बैल आदिक नाना प्रकारके आकारोंको धारण करनेवाले वाहक देव खींचते हैं। चंद्रमा और सूर्यके सोलह २ हजार वाहक देव हैं। तथा ग्रहोंके आठ २ हजार नक्षत्रोंके चार २ हजार और तारोंके दो २ हजार वाहक देव हैं। नक्षत्रोंकी अवस्थितिमें इतना विशेष है कि, अभिजित् मूल स्वाती भरणी और कृतिका ये पांच नक्षत्र क्रमसे उत्तर दक्षिण ऊर्ध्व अधः और मध्य इसप्रकार अवस्थितिको धारण करते हुए गमन करते हैं। चंद्रमा सूर्य और ग्रह इन तीनके विना समस्त ज्योतिषी एकही पंथमें गमन करते हैं। अब आगे ज्योतिष्क विमानोंकी संख्याका निरूपण किया जाता है;—

जम्बूद्वीपमें दो चन्द्रमा हैं। लवणसमुद्रमें चार, धातुकी खण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्द्धमें ७२ चंद्रमा हैं। अर्थात् मनुष्यलोकमें ज्योतिष्क विमानोंके गमनका अनुक्रम इस प्रकार है कि, प्रत्येक द्वीप वा समुद्रके समान दो २ खंडोंमें आधे २ ज्योतिष्कविमान गमन करते हैं। अर्थात् जम्बूद्वीपके प्रत्येक भागमें एक २, लवणसमुद्रके प्रत्येक भागमें दो २, धातुकीखंडद्वीपके प्रत्येक खंडमें छह २, कालोदधिके प्रत्येक खंडमें इक्कईस २, और पुष्करार्द्धके प्रत्येक खंडमें छत्तीस २ चंद्रमा हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, जम्बूद्वीपमें एक वलय है (इसमें कुछ विशेष है सो आगे कहा जावेगा) लवणसमुद्रमें दो वलय (परिधि) हैं,

धातुकीखंडमें छह वलय हैं, कालोदधिमें इकईस वलय हैं, और पुष्करके पूर्वार्द्धद्वीपमें ३६ वलय हैं। प्रत्येक वलयमें दो २ चंद्रमा हैं। पुष्करद्वीपका उत्तरार्द्ध आठ लक्ष योजनका है, इसलिये उसमें आठ वलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२लक्ष योजनका है,इसलिये उसमें ३२ वलय हैं। इसही प्रकार आगे २ के द्वीप वा समुद्रमें वलयोंका प्रमाण दूना २है। अर्थात् मनुष्यलोकसे बाहर जो द्वीप वा समुद्र जितने लक्ष योजन चौड़ा है, उसमें उतनेही वलय हैं। इन समस्त वलयोंमें समान अंतर है। अर्थात् जिस द्वीप वा समुद्रमें जितने वलय हैं, उनसे एक कम अन्तरोंका प्रमाण है। तथा अभ्यन्तर वेदीसे प्रथम वलयतक आधा अन्तर और अन्तिम वलयसे बाह्य वेदीतक आधा अन्तर। सब मिलकर अन्तरोंका प्रमाण वलयोंके प्रमाणके समान हुआ। प्रत्येक वलयकी चौड़ाई चंद्रमाके व्यासके समान $\frac{56}{61}$ योजन है। जिसको वलयोंके प्रमाणसे गुणकर गुणनफलको द्वीप वा समुद्रके व्यासमेंसे घटाकर, शेष बचै उसमें वलयोंके प्रमाणका भाग देनेसे वलयोंके अन्तरका प्रमाण आता है। इसको आधा करनेसे अभ्यन्तर बाह्यवेदी और प्रथम तथा अन्तिम वलयके अन्तरका प्रमाण होता है। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके प्रथम वलयमें १४४ चंद्रमा हैं। द्वितीय तृतीयादिक वलयोंमें चार २ अधिक हैं। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धमें सब वलयोंके चन्द्रमाओंका जोड़ १२६४ होता है। पुष्कर समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ चंद्रमा हैं। अर्थात् पुष्करके उत्तरार्द्धके वलयमें स्थित चंद्रमाओंसे दूने हैं। इसही प्रकार आगे स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त पूर्व पूर्व द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चंद्रमाओंके प्रमाणसे उत्तर २ द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चंद्रमाओंका प्रमाण दूना है। तथा प्रथम २ वलयोंके चंद्रमाओंसे द्वितीयादिक वलयस्थित चंद्रमाओंकी संख्या सर्वत्र चार चार अधिक है। पुष्करसमुद्रमें ३२ वलय हैं। जिनके समस्त चंद्रमाओंका जोड़ ११२०० है। इससे अगले द्वीपमें ६४ वलय हैं, जिनके समस्त चंद्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ है। भावार्थ—पूर्व २ द्वीप वा समुद्रके चंद्रमाओंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रके चंद्रमाओंका प्रमाण चौगुना २ है। परन्तु इतना विशेष जानना कि, उत्तरद्वीप वा समुद्रके वलयोंके प्रमाणसे दूना प्रमाण उस चौगुनी संख्यामें और मिलाना चाहिये। जैसे पूर्वपुष्कर समुद्रके चंद्रमाओंकी संख्या ११२०० जिसको चौगुना करनेसे ४४८०० हुए, इसमें उत्तरद्वीपके वलयोंके प्रमाण ६४ के दूने १२८ मिलानेसे उत्तरद्वीपके चंद्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ होता है। इसही प्रकार आगे भी सर्वत्र जानना। समस्त द्वीपसमुद्रोंके समस्त चंद्रमाओंका प्रमाण संख्यातसूच्यंगुलसे जगच्छ्रेणीको गुणाकार करनेसे जो गुणनफल हो, उसको जगत्प्रतरमेंसे घटानेसे जो अवशेष रहै, उसमें ६५५३६ को ५२९२०००००००००००००००० से गुणाकार करनेसे जो प्रमाण हो, उतने प्रतरांगुलका भाग देनेसे जो लब्ध आवै

उतना है । प्रत्येक चन्द्रमा (इन्द्र) के साथ एक २ सूर्य (प्रतीन्द्र) है । अठ्यासी २ ग्रह, अट्ठाईस २ नक्षत्र और छ्यासठ हजार नौसे पिचहत्तर कोड़ाकोडी तारे हैं । अर्थात् सूर्योंका प्रमाण चन्द्रमाओंके प्रमाणके समान है । ग्रहोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे ८८ गुणित है । नक्षत्रोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे २८ गुणित है । और तारोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे छ्यासठ हजार नौसे पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी गुणित है । अब आगे जंबूद्वीपमें सूर्य और चंद्रमाके गमनमें कुछ विशेष है, उसका स्पष्टीकरण करनेके लिये चार क्षेत्रका वर्णन किया जाता हैं ।

चंद्रमा अथवा सूर्यके गमन करनेकी गलियोंको चार क्षेत्र कहते हैं । समस्त गलियोंके समूहरूप चार क्षेत्रकी चौड़ाई ५१० ४८/६१ योजन है । जिस गलीमें एक चंद्रमा वा सूर्य गमन करते हैं, उसीमें ठीक उसके सामने दूसरा चंद्रमा या सूर्य गमन करता है । इस चार क्षेत्रकी ५१० ४८/६१ योजन चौड़ाईमेंसे १८० योजन तो जम्बूद्वीपमें हैं। और ३३० ४८/६१ योजन लवणसमुद्रमें हैं । चंद्रमाके गमन करनेकी १५ और सूर्यके गमन करनेकी १८४ गली हैं, जिन सबमें समान अन्तर है । ये दो २ सूर्य वा चंद्रमा प्रतिदिन एक २ गलीको छोड़२कर दूसरी २ गलीमें गमन करते हैं । जिस दिन सूर्य भीतरी गलीमें गमन करता है, उसदिन १८ मुहूर्त (४८ मिनिटका एक मुहूर्त होता है) का दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि होती है। तथा क्रमसे घटते २ जिस दिन बाहिरी गलीमें गमन करता है, उस दिन १२ मुहूर्तका दिन और १८ मुहूर्तकी रात्रि होती है । सूर्य कर्क संक्रान्तिके दिन अभ्यन्तर वीथी (भीतरी गली) में गमन करता है । उसही दिन दक्षिणायनका प्रारंभ होता है । और मकरसंक्रान्तके दिन बाह्य वीथीपर गमन करता है । उसही दिन उत्तरायणका प्रारंभ होता है । प्रथम वीथीसे १८४ वीं वीथीमें आनेमें १८३ दिन लगते हैं । तथा उसही प्रकार अन्तिम वीथीसे प्रथम वीथीपर आनेमें १८३ दिन लगते हैं । दोनों अयनोंके मिलेहुए दिन ३६६ होते हैं । इसहीको सूर्यवर्ष कहते हैं । एक सूर्य ६० मुहूर्त्तमें मेरुकी प्रदक्षिणा पूरी करता है । अथवा मेरुकी प्रदक्षिणारूप आकाशमय परिधिमें एक लाख नवहजार आठसौ गगनखंडोंकी कल्पना करना चाहिये । इन खंडोंमें गमन करनेवाले ज्योतिषियोंकी गति इस प्रकार है,— चंद्रमा एक मुहूर्त्तमें १७६८ खंडोंमें गमन करता है । सूर्य एक मुहूर्त्तमें १८३० गगनखंडोंको तय करता है । और नक्षत्र एक मुहूर्त्तमें १८३५ गगनखंडोंको तय करते हैं । चंद्रमाकी गति सबसे मंद है, चंद्रमासे शीघ्रगति सूर्यकी है, सूर्यसे शीघ्रगति ग्रहोंकी है, ग्रहोंसे शीघ्रगति नक्षत्रोंकी है । और नक्षत्रोंसे शीघ्रगति तारोंकी है । इसप्रकार संक्षेपसे ज्योतिष चक्रका कथन किया । इसका सविस्तर कथन त्रैलोक्यसारसे जानना । इस प्रकार मध्यलोकका संक्षेपसे कथन करके अब आगे ऊर्द्धलोकका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है ।

ऊर्द्धलोक ।

मेरुसे ऊर्द्धलोकके अन्ततकके क्षेत्रको ऊर्द्धलोक कहते हैं । इस ऊर्द्धलोकके दो भेद हैं, एक कल्प और दूसरा कल्पातीत । जहां इंद्रादिककी कल्पना होती है, उनको कल्प कहते हैं । और जहां यह कल्पना नहीं है, उसे कल्पातीत कहते हैं। कल्पमें १६ स्वर्ग हैं । १ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर, ७ लांतव, ८ कापिष्ट, ९ शुक्र, १० महाशुक्र, ११ सतार, १२ सहस्रार, १३ आनत, १४ प्राणत, १५ आरण, और १६ अच्युत, । इन सोलह स्वर्गोंमेंसे दो दो स्वर्गोंमें संयुक्त राज्य है । इस कारण सौधर्म ईशान तथा सनत्कुमार माहेन्द्र इत्यादि दो दो स्वर्गोंका एक २ युगल है । आदिके दो तथा अन्तके दो इसप्रकार चार युगलोंमें आठ स्वर्गोंके आठ इन्द्र हैं । और मध्यके चार युगलोंके चार ही इंद्र हैं । इसलिये इंद्रोंकी अपेक्षासे स्वर्गोंके १२ भेद हैं । सोलह स्वर्गोंके ऊपर कल्पातीतमें तीन अधो ग्रैवेयक, तीन मध्यम ग्रैवेयक, और तीन उपरिम ग्रैवेयक, इसप्रकार नव ग्रैवेयक हैं । नव ग्रैवेयकके ऊपर नव अनुदिश विमान तथा उनके ऊपर पंच अनुत्तर विमान हैं । इसप्रकार इस ऊर्ध्वलोकमें वैमानिक देवोंका निवास है । सोलह स्वर्गोंमें तो इन्द्र सामानिक पारिषद आदि दश प्रकारकी कल्पना है । और कल्पातीतमें समस्त देवोंमें स्वामीसेवक व्यवहार नहीं हैं । इसलिये सबही अहमिन्द्र हैं । मेरुकी चूलिकासे एक बालके (केशके) अन्तरपर ऋजुविमान है । यहींसे सौधर्म स्वर्गका प्रारंभ है । मेरुतलसे लगाय डेड़ राजूकी ऊंचाईपर सौधर्म ईशान युगलका अन्त है । उसके ऊपर डेड़ राजूमें सनत्कुमार माहेन्द्र युगल है । उससे ऊपर आधे आधे राजूमें छह युगल हैं। इसप्रकार छह राजूमें आठ युगल हैं।सौधर्म स्वर्गमें ३२ लाख विमान है। ईशानस्वर्गमें ढाई लाख, सनत्कुमारमें १२ लाख, माहेन्द्रमें ८ लाख, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयुगलमें ४ लाख, लांतवकापिष्टयुगलमें ५० हजार, शुक्रमहाशुक्रयुगलमें ४० हजार, सतारसहस्रार युगलमें ६ हजार और आनतप्राणत तथा आरण और अच्युत इन चारों स्वर्गोंमें सब मिलकर ७०० विमान हैं। तीन अधोग्रैवेयकमें १११, तीन मध्यग्रैवेयक में १०७, और तीन उर्द्ध ग्रैवेयकमें ९१ विमान हैं । अनुदिशमें ९ और अनुत्तरमें ५ विमान हैं । ये सब विमान ६३ पटलोंमें विभाजित हैं। जिन विमानोंका ऊपरीभाग एक समतलमें पाया जाता है, वे विमान एक पटलके कहलाते हैं । प्रत्येक पटलके मध्य विमानको इन्द्रकविमान कहते हैं । चारों दिशाओंमें जो पंक्तिरूप विमान हैं, उनको श्रेणीबद्ध विमान कहते हैं । श्रेणियोंके बीचमें जो फुटकर विमान हैं, उनको प्रकीर्णक विमान कहते हैं । प्रथमयुगलमें ३१ पटल हैं, दूसरे युगलमें ७, तीसरेमें ४, चौथेमें २, पांचवेमें १, छठेमें १, आनतादि चार कल्पोंमें ६, नवग्रैवेयकमें ९, नवअनुदिशमें १, और पंचानुत्तरमें एक पटल है । इन पटलोंमें असंख्यात २ योजनोंका अन्तर है । इन ६३ पटलोंमें ६३ इन्द्रकविमान हैं, जिनमें पहले इन्द्रकका नाम ऋजुविमान है, और

अंतके इन्द्रकका नाम सर्वार्थसिद्धि है। सर्वार्थसिद्धि विमान लोकके अन्तसे १२ योजन नीचा है। ऋजुविमान ४५ लाख योजन चौड़ा है। द्वितीयादिक इंद्रकोंकी चौड़ाई क्रमसे घटकर अंतके सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकविमानकी चौड़ाई एक लक्ष योजन है । प्रथमपटलमें प्रत्येक श्रेणीमें श्रेणीवद्ध विमानोंकी संख्या बासठ २ है। द्वितीयादि पटलोंके श्रेणीवद्ध विमानोंकी संख्यामें क्रमसे एक २ घटकर बासठवें अनुदिशपटलमें एक २ श्रेणीवद्ध विमान है। और इसही प्रकार अंतिम अनुत्तरपटलमें भी श्रेणीवद्धोंकी संख्या एक २ है । समस्त विमानोंकी संख्यामेंसे इंद्रक और श्रेणीवद्ध विमानोंका प्रमाण घटानेसे प्रकीर्णक विमानोंका प्रमाण होता है । प्रथमयुगलके प्रत्येक पटलमें उत्तरदिशाके श्रेणीवद्ध तथा वायव्य और ईशान विदिशाके प्रकीर्णक विमानोंमें उत्तर-इन्द्र ईशानकी आज्ञा प्रवर्तती है। शेष समस्त विमानोंमें दक्षिणेन्द्र सौधर्मकी आज्ञा प्रवर्तती है । जिन विमानोंमें सौधर्म इन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तती हैं, उन विमानोंके समूहका नाम सौधर्मस्वर्ग है । और जिन विमानोंमें ईशानेन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तती है, उनके समूहको ईशानस्वर्ग कहते हैं । इसहीप्रकार दूसरे तथा अंतके दो युगलोंमें जानना । मध्यके चार युगलोंमें एक एक इन्द्रकी ही आज्ञा प्रवर्तती है। पटलोंके ऊर्ध्व अंतरालमें तथा विमानोंके तिर्यक् अन्तरालमें आकाश है । नरककी तरह बीचमें पृथ्वी नहीं हैं । समस्त इन्द्रकविमान संख्यात योजन चौड़े हैं । तथा सब श्रेणीवद्ध विमान असंख्यात योजन चौड़े हैं । और प्रकीर्णकोंमें कोई संख्यात योजन और कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं । प्रथम युगलके विमानोंकी मोटाई ११२१, दूसरेकी १०२२, तीसरेकी९२३, चौथेकी ८२४, पांचवेकी ७२५, छठेकी ६२६, सातवें और आठवें की ५२७, तीन अधोग्रैवेयककी ४२८, तीन मध्यम ग्रैवेयककी ३२९, तीन उपरिम ग्रैवेयककी २३० और नवअनुदिश और पंच अनुत्तर विमानोंकी मोटाई १३१ योजन है । प्रथम युगलके अंतिम पटलमें दक्षिण दिशाके अठारहवें श्रेणीवद्ध विमानमें सौधर्मेन्द्र निवास करता है । तथा दक्षिण दिशाके १८ वें श्रेणीवद्ध विमानमें ईशानेन्द्र निवास करता है । द्वितीय युगलके अंतिम पटलमें दक्षिण दिशाके १६ वें विमानमें सनत्कुमारेन्द्र तथा उत्तर दिशाके १६ वें विमानमें माहेन्द्र निवास करता है । तृतीय युगलके अंतिम पटलमें दक्षिण दिशाके १४ वें विमानमें ब्रह्मेन्द्र, चतुर्थ युगलके अंतिम पटलमें उत्तर दिशाके १२ वें विमानमें लांतवेन्द्र, पांचवें युगलके अंतिमपटलमें दक्षिण दिशाके दशवें श्रेणीवद्ध विमानमें शुक्रेन्द्र, छठे युगलके अंतिमपटलमें उत्तर दिशाके आठवें श्रेणीवद्ध विमानमें सतारेन्द्र, तथा सातवें आठवें युगलोंके अंतिमपटलोंमें दक्षिण दिशाओंके छठे छठे विमानोंमें आनतेन्द्र और आरणेन्द्र, तथा उत्तर दिशाओंके छठे २ श्रेणीवद्ध विमानोंमें प्राणत और अच्युत इन्द्र निवास करते हैं । इन समस्त विमानोंके ऊपर अनेक नगर बसते हैं । इनका सविस्तर कथन त्रैलोक्यसारसे जानना ।

लोकके अंतमें एक राजू चौड़ी सात राजू लम्बी और आठ योजन मोटी ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी है । उस आठवीं पृथ्वीके बीचमें रूप्यमयी छत्राकार मनुष्यक्षेत्रसमान गोल ४५ लक्ष योजन चौड़ी मध्यमें आठ योजन मोटी (अंततक मोटाई क्रमसे घटती हुई है) सिद्धशिला है । उस सिद्धशिलाके ऊपर तनुवातमें मुक्तजीव विराजमान हैं । इसप्रकार ऊर्ध्वलोकका कथन समाप्त हुआ ।

इस अधिकारको समाप्त करनेसे पहले इतना विशेष वक्तव्य है, कि, आजकल हम लोगोंका निवास मध्यलोकके जम्बूद्वीपसंबंधी दक्षिणदिशावर्ती भरतक्षेत्रके आर्य खंडमें है ।इस आर्यखंडके उत्तरमें विजयार्द्ध पर्वत है । दक्षिणमें लवणसमुद्र पूर्वमें महागंगा और उत्तरमें महासिन्धु नदी है । भरतक्षेत्रकी चौडाई ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है । जिसके बिलकुलबीचमें विजयार्द्धपर्वत पड़ा हुआ है । जिनसे भरतक्षेत्रके दो खंड हो गये हैं । तथा महागंगा और महासिन्धु हिमवन् पर्वतसे निकलकर विजयार्द्धकी गुफाओंमें होती हुई पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जा मिली हैं,जिनसे भरतक्षेत्रके छह खंड हो गये हैं । इनका आकार इसप्रकार है;-

यह सब कथन प्रमाणयोजनसे है । एक प्रमाण योजन वर्त्तमानके २००० कोशके बराबर है । इससे पाठक समझ सकते हैं कि, आर्यखंड बहुत लम्बा चौड़ा है । चतुर्थकालकी आदिमें इस आर्यखंडमें उपसागरकी उत्पत्ति होती है । जो क्रमसे चारों तरफको फैलकर आर्यखंडके बहु भागको रोक लेता है । वर्त्तमानके एशिया योरोप एफ्रिका एमेरिका और आस्ट्रेलिया ये पांचों महाद्वीप इसही आर्यखंडमें हैं । उपसागरने चारों ओर फैलकर ही इनको द्वीपाकार बना दिया है। केवल हिन्दुस्थानको ही आर्यखंड नहीं समझना चाहिये । वर्त्तमान गंगा सिंधु महागंगा या महासिंधु नहीं हैं ।
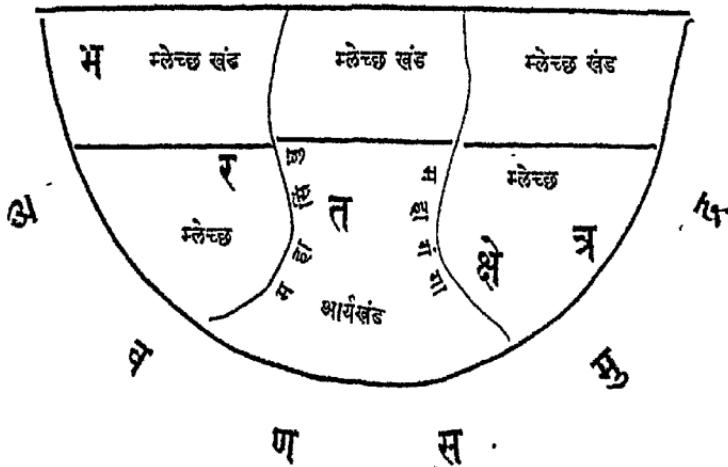
इसप्रकार जैनसिद्धान्तदर्पण प्रथमें आकाशद्रव्यनिरूपण नामक पांचवां अधिकार समाप्त हुआ ।

समाप्तोऽयं प्रथमखण्डः।